श्री :

श्री श्री निर्मल ग्रंथमाला पुष्प ५

श्री

हरि विरह माला

मौक्तिकमाला, नीलममाला, स्फटिकमाला,
सुवर्णमाला, वलयमाला, भवमाला
सायुज्यमाला

हिन्दी भारतीमें
आदिकविके आदि छन्द में

माला—मालिनी

लेखिका : कुमारी निर्मलदेवी 'श्यामा'-श्री

वेदान्ततीर्थ - काव्यतीर्थ - दर्शनभूषण - वेदान्तरत्न
व्याकरण विशारद - विद्या पारिजात - अभिनव भारती
व्याख्यान सरस्वती...... ....

निर्मल श्यामरस, निर्मल भावकुसुम,
निर्मल रासोत्सव, रसेश्वरी........आदिकी लेखिका

मूल्यश्री :—५ रु.

परिचायिका-लेखक

पू. पा. महात्माश्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीजी

श्री भागवतीकथा, भागवत चरित,

श्री शुक, श्री चैतन्य चरितावलि

आदि के लेखक

प्रतियाँ-१२०० प्रथमावृत्ति

-० लेखिका और प्रकाशिका ०-

कुमारी निर्मलदेवी 'श्री'

पार्वती निवास - नं. १०,

रोशननगर, चदावरकर रोड.

बोरीवली (पश्चिम) बम्बई

पुस्तक प्राप्तिस्थान भी यही है

प्राकट्यदिन

श्री शरद् पूर्णिमा, ता ४/१०

वि स. २०१६, ई. स. १९६०

शा. श १८८२

मुद्रक ·

मुकुंदकुमार के शास्त्री

ईला प्रिन्टरी, मामाकी हवेली, माणेकचोक, अहमदाबाद

इस लेखिका के

हिन्दी गुजराती और संस्कृत में
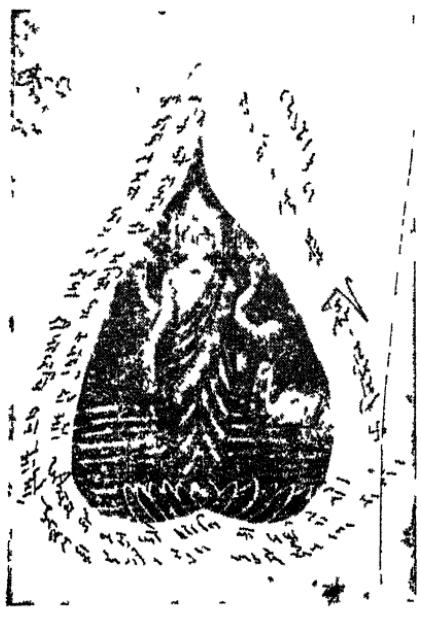
पद्यमें, अगद्यापद्यमें, गद्यमें

पचास, ग्रन्थपुष्प अप्रकाशित हैं।

यह 'श्री'-श्री सरस्वती निधि-

श्री निधि-धन्यभागी धन के,

संगम होनेसे विधिवत् प्रकाशित होगी।

श्री

इस लेखिकाकी अन्य पुस्तक

निर्मल श्यामरस [काव्य सग्रह] प्रथम पुष्प

विभाग-१ निर्मलस्वरूप, २ दिव्यरसझरा, ३ श्याममुक्ता
४ रासनृत्य अभिनयादि, ५ प्रार्थनाप्रसून,
६ पावन प्रेरणा, ७ करुण रस, ८ विप्रयोग रस,
९ संयोगरस, १० देववाणी प्रसूनानि
पृष्ठ-२९०, डेमी साईज मूल्य ३-८

निर्मल भावकुसुम [अगद्यापद्य-गद्य] द्वितीय पुष्प

विभाग-१ विप्रयोगरस, २ सयोगरस, ३ दिव्यरस झरा,
५ जीवनरश्मि, ६ पावनप्रेरणा, ७ करुण रस,
८ पार्थना प्रसून गुच्छ, ९ पत्र पुष्पहार,
१० सरस्वतीने श्रीचरणे, ११ निर्मल स्वरूप
पृष्ठ ४९६, क्राउन साईज मूल्य-५.

निर्मल रासोत्सव

[रासनृत्य अभिनय भावगीत] तृतीय पुष्प
पृष्ठ-५३ क्राउन साईज ०-८-०.

रसेश्वरी चतुर्थ पुष्प

विभाग-१ रसेश रसरास, २ हृदय रसरास
३ श्री भगवती रसरास, ४ विराट रसरास,
५ स्तुति सुमन [पृष्ठ-१२८, क्राउन साईज १-४-०

भ्रमरगीत

[प्रा. स्म. सु श्री नंददासजी कृत भ्रमरगीतका अनुवाद]
ऊपर लिखित सर्वग्रन्थ गुजरातीमें है,
निदर्शनार्थ कुछ सस्कृत पद्यभी निहित हैं।

श्री हरि विरहमाला (अनुष्टुप् छंद में)

अनंत के चरणों में, अमृताभिषेक स्वस्तिवाचन,
पुरोवचनमाला, चित्रमाला, मालागति, पत्नी,
* श्री की भी तिरछी छबि *

卐 卐 卐

मौक्तिकमाला, नीलममाला, स्फटिकमाला,
सुवर्णमाला, वलयमाला, भवमाला,
सायुज्यमाला,

लेखिकाकी – 'श्री श्री निर्मल ग्रंथमाला' – के

१ निर्मल श्यामरस २. निर्मल भावकुसुम
३. निर्मल रासोत्सव ४. रसेश्वरी

चार पुष्प-मौक्तिक, रसपूर्ण कृतियाँ प्रकाशित हैं। जिन ग्रथोपर दैनिक, साप्ताहिक, मासिकों के, महापुरुषों के कविरत्नों के, विद्वत्वर्यों के, राजपुरुषों के, भावुकों के असंख्य अवलोकन आये है,—

उनमें से चुने हुए भावफूलों का विशद, हृदयरस-सत्कार ग्रंथ जब कभी स्वतंत्र रूपसे प्रकट होगा।

भावांजलि अर्पनेवाले भावुक आत्माओंके प्रति,
तन्मयता से स्वाध्याय करनेवाले पाठको के प्रति,
रस सरोवरों के यात्रियों के प्रति,
हार्दिक कृतज्ञता! श्री

इस लेखिकाकी अन्य अप्रकाशित पुस्तकें

(१)	प्रेमकी सीमा कहाँ है !?	हिन्दी	(गद्यकाव्य)
(२)	प्रेमकी सीमा कहाँ है !?	,,	(पद्यकाव्य)
(३)	प्रकृति और पुरुष	,,	(अपद्यागद्य)
(४)	प्रकृति और प्रवासी	,,	(,,)
(५)	तुलसी	,,	(अगद्यापद्य)
(६)	रसश्रुति	,,	(श्लोक काव्य)
(७)	माँ भारतीके श्री चरणोंमें	,,	(गद्य)
(८)	निर्मल श्यामसुधा	संस्कृत	(काव्य)
(९)	विराटने वदन	गुजराती	(गद्यकाव्य)
(१०)	अनंतने चरणे	,,	(गेय काव्य)
(११)	प्रकाशपथे	,,	(गद्य)
(१२)	लग्नमंदिर	,,	(लग्नगीत)
(१३)	दैवीलग्न पडी	,,	(पद्य)
(१४)	रस आसव	,,	(गद्य)
(१५)	सोमवल्ली	,,	(पद्य)
(१६)	विज्ञान-किरण	,,	(गद्य)
(१७)	विज्ञान-ज्योति	,,	(पद्य)
(१८)	शकुन्तला	,,	(पद्य)
(१९)	श्री शक्तिने	,,	(पद्य)
(२०)	रमण पालवडे	,,	(पद्य)
(२१)	प्रीति पलगडी	,,	(पद्य)
(२२)	श्री श्री-रसमाला	हिन्दी	(पद्य)

आदि.... ...पू० पुस्तकें

⊙ चित्रस्य शब्दचित्रम् ⊙

श्री शुकसंहितां सदा....

卐 श्रीमद्भागवत—मङ्गलाचरणम् 卐

★

ॐ.

(अनुष्टुप्)

श्री श्यामं स्वामिनं भक्त्या श्री श्यामां स्वामिनीं रहः;
मातरं शारदां रक्त्या योगमाया-श्रियं मुहुः,

नि 卐 卐

शैलजाजं, धरां प्रीत्या शक्तिं नारायणीं वराम्,
सूर्य-सोमादिकान् भक्त्या सर्वाचार्यांस्तथा सुरान्,

मं 卐 卐

सरित्-वनस्पतीन् भूत्या श्रीशुकं, बादरायणम्,
निमिषानां अरण्ये मे नैमिषारण्यके गणम्,

ल 卐 卐

ध्यात्वा स्मृत्वा च नत्वा तु श्रीशुक संहितां सदा,
वाहयं वाहयेऽयं 'श्रीः,' रसभावामृतां मुदा ! !

श्रीः 卐 卐

दिनांक : १०-९-१९६० भाद्र कृष्ण पंचमी
वि. सं. २०१६ शानेरूपा

'श्री—कुटीरम्' बोरीवली [मोहमयी]

卐 परिचायिका 卐

मोहन ! तेरे विरहमे, बिलखै बहु ब्रजबाल॥
अँसुआ बनि बरसौ सतत, सरसौ बनि हियमाल ॥
मोहन तै हों लरि वरी, निठुर करत नहिँ प्यार ।
बोल्यो पग चरि के कितव, मोर विरह आहार ॥ ”

क प्राचीन कहावत है;
“ होनहार बिरवान के होत चीकने पात ”
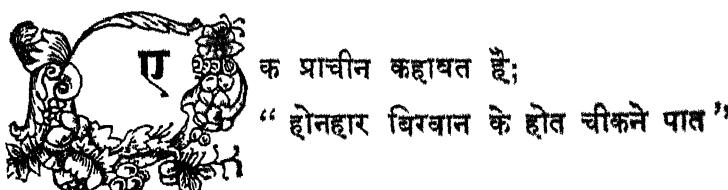
बाल्य काल में ही जिसके सुंदर सुंदर आकर्षक चिकने पत्ते हों
तो उससे अनुमान लगाते हैं, कि
यह वृक्ष आगे चलकर सुंदर होगा ।
किन्तु अनुमान तो अनुमान ही है,
यदि कोई सुंदर लतिका है,
उसके चिकने पत्त हुए और
इसके पुष्पों में सुगंध न हुई, तो
उसकी उतनी शोभा नहीं, प्रशंसा नहीं।

---

*ले. संतवर्य श्री प्रभुदतजी ब्रह्मचारीजी श्री चैतन्य चरितावली श्री भगवती कथा, श्री भगवत चरित श्री शुक आदिके लेखक

होनहार लतिका यदि पुष्पित होकर
अपनी भीनी-भीनी मनहर सुगन्धि से
जन मन के हृदय को प्रमुदित कर सके,
अपने सुवासित पुष्पों के हारो से
नर नारियो के मन को आह्लादित कर सके,
देव चरणों में चढ़े,
प्रभुका पूजन बने,
तभी उसका जन्म सार्थक है!
तभी उसके होनहार पने की ख्याति है!
अलौकिक वृज वृंदावन की निर्मल लतिका में मैंने
ललित लता-धर्मो का संपूर्ण सामञ्जस्य पाया!
अनुमान का प्रत्यक्ष प्रमाणमे साक्षात्कार हुआ!
देवीश्री – सु श्री कुमारी निर्मलदेवी जी को
एक अपूर्व बाल ज्योति के रूपमें
सर्व प्रथम मै ने कुंभ के अवसर पर २८ वर्ष पूर्व
तीर्थराज प्रयाग में देखा था।
अपने पिता के साथ वह हमारे उत्सवमें आयी थी।
उस समय हमारे यहाँ चौदह महीने अखंड
नामजप संकीर्तन साधनानुष्ठान चल रहा था। मौनी फलाहारी व्रती
बनकर अखंड कीर्तन करते हुए बहुत से साधक साधना कर रहे थें
कुंभ में आये हुए प्रायः सभी विशिष्ट संत, महन्त - मंडलेश्वर महात्मा-
ओंको हम नित्य वारी-वारी से प्रवचन के लये बुलाया करते थें।
छोटी सी निर्मल बच्चीको भी हमने
व्याख्यान के लिये आमंत्रण दिया।

वह छाटी देवी अपने पिताके साथ

संकीर्तन भवन के मंडप में पधारी थीं।

उनकी अवस्था उन दिनों में ७, ८ वर्षकी होगी।

वाला सरस्वती ने मंडप में आकर

जो धारा प्रवाह संस्कृत में व्याख्यान दिया, तो

समुपस्थित संत, महंत, विद्वान् तथा समस्त श्रोता

अवाक् रह गये। ......

एक तो बच्ची,

दूसरे गुजराती,

तीसरे संस्कृतमें व्याख्यान,

चौथे उसकी वाणीमें लचीलापन,

पांचवे निर्मल बालमुख मंडलका रवि - सुधाकर - सा तेज,

छठवे पूर्ण विनय - मूर्ति,

सातवें सहज श्याम मग्नता मीरा की तरह,

आठवें गार्गीवत् वेदवेदांत पर उसकी स्वाभाविक गहन प्रश्नमाला,

नम्र शास्त्रार्थ शक्ति।

नवमें बालिकाके गौर वर्ण जैसा उसका हृदय भी उज्जवल भाव भरा....

उसका विमल सौजन्यभी!

दशवें उसका स्वर्गीय सहज सगीत सूर!

ग्यारहवें देवदत्त गुणविभूति और दिव्य देववाणी

इन सभी कारणों से

समस्त मेले में

उसके नामकी धूम मच गई!!

लोग उसे साक्षात् वीणापाणि सरस्वती ही

समझने लगे.......

लगभग २०, २२ वर्षके पोश्चात् वह मुझे बम्बई में पुनः मिली। और उसने बड़े ही स्नेह से कहा–पिताजी! मेरे एक जन्मदाता पिता का तो परलोकवास हो गया, परन्तु दूसरे धर्मपिता आप हैं ही! और सचमुच उसने मेरा पितृतुल्य आदर किया।

फिर वि. सं. २००९ मे अहमदाबाद के यज्ञ–प्रसंग में उनको व्याख्यान के लये मैंने यज्ञ समितिका एक व्यक्ति भेजकर बम्बईसे बुलवाया था। देवीश्रीकी वचनसुधा वर्षा से मंगलमय यज्ञकी पूर्णाहुति हुई! बेटी निर्मला को देखकर मेरे मन में वात्सल्य उमडता है!!

मैने उसके संस्कृत, हिन्दी तथा गुजराती के बहुत से ग्रंथ देखे।

जैसे वह शैशव से धाराप्रवाह संस्कृत मे भाषण करती है, उसी प्रकार, बालवय से गुजराती तथा हिन्दी में भी व्याख्यान देती है!

इस देवसुता की मातृभाषा ही मानो देववाणी है!
व्यावहारिक दृष्टि से गुजराती तो उसकी मातृभाषा ही ठहरी,
किन्तु वार्तालाप में–अपद्यागद्य हिन्दी में भी वह तनिक
भी पलभरभी अणुमात्र हिचकती नहीं!
प्रायः देखा गया है कि जो सुंदर प्रभावशाली वक्ता होता है,
जो अच्छे विख्यात लेखक या कवि होते हैं,
उनकी वक्तृत्व शक्ति इतनी प्रशंसनीय नहीं होती।
परन्तु हम श्री देवी में देखते हैं कि
वह जितना ही सुंदरतम बोलती है!
उतना ही सुंदरतम लिखती है!!

गद्य–पद्य में उसकी समानगति है!

यह सुकुमारिका अति कमनीय कोमल कविता करती है!

निर्मल हृदय वृन्दावन के रास नृत्य तो एक ओर ही आनंद
दे रहे हैं!

अद्भुत अगद्यापद्य काव्य भी लिखती है–
यह रस तपस्विनी!

मानव जीवन के समस्त विषय पर

आपने प्रचुर साहित्य लिखा है।

हृदय के गहन भाव और विश्व विराट में

विकसित तत्त्वो का आलेखन

लेखिकाने अनूठी शैली से किया है!

इस सुरकन्या ने संस्कृत, हिन्दी गुजरातीमें साहित्य की प्रचुर स्वर्गंगा बहाई है।

पचास पुस्तकें अप्रकाशित है,

अंग्रेजी में एक गद्य काव्यग्रंथ है।

गुजराती में चार श्रेष्ठ पुस्तक रत्न प्रकाशित हो चुके हैं।

जिसका भारत मे बहुत सन्मान हुआ है।

भारतका भाग्यमय भावचन्द्र जब चमकेगा तब निर्मल

वाङ्मय की भाव यमुना में

ज्ञान सरस्वती में

निर्मल काव्यगंगा में स्नान करके

समाज आत्म विभोर हो जायगा!

किन्तु न जाने राज्यतंत्र या धनिकवर्ग इस महाधन से

कब पाठकों को लाभान्वित कर सकेगा!?

परम प्रकाशमय साहित्य
अप्रकाशित स्थिति में है
यह बात सभीके लिये विचारणीय है!

× × ×

वास्तविक बात यह है कि श्री देवी निर्मल कुमारी की
विद्या, भक्ति, ज्ञान साधना दैवी गुण संपत्ति
एक जन्म के नहीं है
यह तो कई जन्मो के संस्कारो के फल है!!
तभी तो यह श्याम हृदया बालिका बाल शैशव मे
श्रीकृष्ण की विविध मूर्तियों से खेलती थीं।
तभी तो तीन वर्ष की वयमे वह वेदोच्चार करती थीं।
तभी तो पांच वर्षकी वयसे कई भाषाओ मे भाषण करने लगी।
तभी तो सात वर्षकी वयसे उसने बाल सभाओंका
अध्यक्ष पद संभाला।
तभी तो आठ वर्ष की वयसे उसने विशिष्ट सभापरिषदों का
प्रमुख स्थान और प्रवक्ता रूप से संचालन किया!
तभी तो बारह चौदह बर्ष की उम्र में ही उनको
असंख्य मानपत्र और
अगणित चंद्रक और नानाविध भेट
और प्रचुर पारितोषिक मिले!
तभी तो सोलह वर्ष के स्वल्प समयमे संस्कृत की
३६ परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं!
तभी तो अनेक प्रांतोंमें राजा से लेकर रंकतक उनके
अनेक भक्त भावुक हैं!

तभी तो किशोर वयमें अनेक कलाएं आत्मसात् हुई !
तभी तो सोलह बर्ष की आयु में
बहुमानमयी के
निर्मान हृदय ने सभी को छोड़कर कुछ वर्षों के
लिये एकांतिक साधना की !!

तभी तो बालिका देवीने बालवयमें, किशोर वयमें, युवावयमें
अनेक ' दिव्यादेश ' पाये !
जो निर्मल हृदय में निगूढ़ हैं ।
उनके मुख से जानना कठिन हैं ।
उनके निकट अंतरंग भावुकों से कुछ सहज
जाना गया सो ही !
वास्तव मे तो श्यामा की प्रत्येक कृति ही वह बात बोल उठती है ।
तभी तो वह निरंतर दिव्य रस में डूबी हुई लगती है ।
तभी तो इस तपस्विनीमें इतनी सहिष्णुता है ।
तभी तो अज्ञानी, मूढ़, तेजोद्वेषी, मत्सर शील,
विघ्न संतोषी दुर्जनों के
अनेक आक्रमण भी हँसते हँसते झेलें !
इस संसारमे देवभी हैं दानवभी हैं ।
और ईश्वर की कृपा से विजय होती रही !!

यह अप्रतिम – एकमात्र मृदुलतम फूल ही है !
अद्वितीय वीर कन्या भी है ।
उसके निर्मल पुण्यपुंज से अभिभूत भस्मीभूत
होती रहीं विघ्न बाधाएँ ।

तभी तो किशोर वय से आपने अपने सभी कार्य और
सारा अलौकिक व्यवहार स्वतः ही संभाला।
उनका जन्म स्थानीय वैश्य कुटुंब व्यापारी
सामान्य अक्षरज्ञान वाला है,
मायामय सांसारिक जीवन मय है।
सिर्फ यह ज्येष्ठा सुपुत्री निर्मल बच्ची बहिरंतर स्वरूपमें
सभी से सर्वथा ही अति विभिन्न है।
विद्याध्ययन मे अध्यापको को रखने मे पिता का सहकार रहा;
परंतु कुछ समय बाद ही अनेक विषम योगों मे
अपने ध्येय की वह
अकेली ही राही बनीं।
परन्तु वह अकेली नहीं थी,
माता सरस्वती की छाँह और
उनके आराध्य प्रिय श्री श्यामसुंदर का परम सम्बल साथ में था!!
और कड़ी विकट वीथी से चलते हुए,
श्याम तपस्विनी की प्रच्छन्न प्रताप शक्ति सहस्त्र गुण खिल उठी!
उसने आज के क्षण तक पैतृक सम्पत्तिका कोई
उपयोग नहीं किया!
दिया पर लिया नहीं तनिक भी!
सब ही पर विनीत सौम्य भावना बहाई.......
किशोर वय के अंत से ही—
आत्मशक्ति पर ही रहनेका अटल आश्चर्यमय आरंभ किया!
इस सरस्वतीने अपनी सरस्वती के अनन्य भावुकोंके
अनन्य भावनासे अर्पित भाव-द्रव्य का ही उपयोग किया!

तभी तो ज्ञान दान की शक्ति की तरह अपनी वस्तुएँ भी
विद्वानों को, व्यथितोंको, बिना हिचके ही दे डालती है!
अपना स्वयं का तो विचार भी भूल जाती है!
कारण अपने स्वरूप को आत्मवत्
जगत के दूसरे रूपो मे देखती है।
एक महान् श्रीमान् भी इस सरस्वती तनया की
उदारता को नहीं पहुँच सकता है।
मुझे एक श्लोकका स्मरण हो आया।
"दातृत्वं प्रिय वक्तृत्वं धीरत्वं उचितज्ञता"।
अभ्यासात् नैव लभ्यन्ते चत्वारो सहजा गुणाः॥
ज्ञान देने की शक्ति,
आकर्षक तथा सबको प्रिय लगनवाले भाषणकी शक्ति
धीरता और उचितज्ञता
ये चारो गुण कोई चाहे
कि अभ्यास के द्वारा हम उन्हे प्राप्त कर ले तो कठिन है।
ये गुण तो स्वाभाविक जन्म जात
अनेक जन्म के संस्कारों से स्वतः ही होते हैं।
तभी तो यह बेटी ऋषिकन्या सी स्वाश्रयी है।
अपने सारे कार्य ही अपने हाथों से करती है।
अपनी सारी व्यवस्था आप ही सम्हालती है।
अपने आवास की व्यवस्था स्वतंत्र आत्मशक्ति पर चलती
रहती है।
उनकी अनन्य भक्त माताओकी ओर से समर्पण सेवाएं
होती रहती है।

यह बच्ची देवकन्या के विचार में; वचनमें, वस्तु में आसपास सर्वत्र वातावरणमें सौदर्य तत्त्व की उपासना ही निखरती रहती है!.........

तभी तो श्यामा के निर्मल मन मे श्याम के
वियोग - संयोग के अनुभव मूर्तिमंत खेल रहे हैं।
हम देखते हैं कि निर्मल की कविता मे करुणा का एक
अजस्र स्रोत बहता सा दिखाई देता है।
इसकी अधिकांश कविता विरह-जन्य हैं।

जो नारी हृदय की एकाधिपत्य निधि है।.......
ब्रह्माजीने नारी की रचना करते समय कुछभी सोचा हो,
उनके मनमें जो भी भाव रहा हो,
उनका जो भी संकल्प क्यों न रहा हो,
किन्तु इतना हम अवश्य कहेंगे
कि नारी की रचना में उन्होंने पक्षपात
अवश्य किया है।

नारी को वैसे अबला कहा जाता है;
किन्तु पुरुषों की अपेक्षा उनमें बहुत सी विशेषताएँ हैं—
जैसे! स्निग्धता, कोमलता, सरलता, परोपकारिता,
दया, ममता, कलाप्रियता, तथा आत्मसमर्पण की भावना
इन सब कारणों से विरह का जो स्रोत है वह
नारी हृदय से ही फूटता है!
कवि विरह का जो वर्णन करेगा
वह सुना सुनाया कृत्रिम तथा अपूर्ण होगा!

क्योंकि स्त्री चाहे, कोई स्त्री कितनी भी सुंदर चतुर तथा गुणवती हो किन्तु वह हो वन्ध्या, तो वह प्रजजन की पीडा का यथार्थ वर्णन नही कर सकती, जो करेगी भी तो वह यथार्थता से दूर होगा, इसलिये कि वह विषय तो अनुभव गम्य है। " जा के पैरन कटी बिवाई सो का जाने पीर पराई "!

'वन्ध्या क्या जाने प्रसव की पीड़ा'
जिसके हृदय मे विरह उठा ही नहीं;
वह विरह की पीर क्या जाने ?

हमलोग भी विरह का वर्णन करते हैं, वह उसी प्रकारका है। जिस प्रकार अयोध्या, वृंदावन आदि स्थानों मे बहुत से पुरुष सखी वेश में रहते हैं। फिर भी पहिचान ही लिये जाते हैं। थोड़ी देर भ्रम या संभ्रम भले ही उत्पन्न कर दे, किन्तु अन्त में तो बात पकड ही ली जाती है।

एक सखीने सांवली सखी के रूप में–
ठाकुरजी के अनवद्य सौंदर्य की बानगी चखली!
ऐसा। अपूर्व सौंदर्य देखकर अवाक् रह गई!....
पर फिर भी श्री श्याम सुंदर,
सांवली सखी के वेश में पकड़े गये थें....
कहने का अभिप्राय इतना ही है
कि बनावट तो बनावट ही है।
वह अधिककाल टिक नहीं सकती।
विरह के अनुभव को यथार्थ में नारी ही व्यक्त कर सकती है....
क्योंकि उसे उसका प्रत्यक्ष अनुभव है!

हम पुरुष जो वर्णन करते है वह तो
नारी वेदना को देखकर,
उसके मुख से प्रलाप सुनकर,
उसका अनुमान करते है ।
और उसीको अपनी भाषा मे गाते हैं।

ब्रज के रसिको ने जो इस मधुर रस का वर्णन किया है वह अपने को गोपी मानकर ही किया है। हम पहिले समझते थे "चन्द्र सखी भजबाल कृष्ण छबि" तो ये कोई चन्द्र सखी महिला होगी, पीछे पता चला ये तो पुरुष शरीर मे अपनेको गोपी मानते थे ।

इसी प्रकार ललित. किशोरी, ललित माधुरी कृष्ण प्रिया, हित सखी आदि सैकडो रसिक हुए है। इनके विरह में यथार्थता है क्यों कि गोपी भाव मे भावित होकर उन्होने लिखा है!

फिर भी मीरा के बिरह में जो रस है।
वह इन सबसे भिन्न ही है।

ब्रज मे अभी थोड़ेही दिन पूर्वं नारायण स्वामी नाम के एक रसिक उपासक हुए हैं, उनके विरह के बड़े ही सुंदर पद हैं। उन्हों ने एक पद मे एक विरहणी गोपी की दशा का कितना सजीव वर्णन किया है। विरहणी रो रों कर दूसरी सखी से कह रही है—

"सखि! कैसे करूँ मै हाय न कछु वश मेरो।
बिनु देखे सावरों चन्द्र दृगनि मे अँधेरो॥"

× × ×

"सखि ! नाशयण जो नहिं मिलौगो वह मनके लुटेरो।
सो नन्द द्वार पै जाय करूंगी मै डेरो ।।"

× × ×

विरहीणी के मिलने की उसमे अधिक तड़प हैं। वह श्याम सुंदर से मिलने को सबकुछ करने को उद्यत है।

इसी प्रकार सूरदासजी की एक सखी अधीर हो रही है। दूसरी सखी उसे समझाती है—"बहिन ! इतनी अधीर क्यों होती है। तनिक धीरज धारन कर" बहिन। तुम मेरी विवशता बिना समझे ही उपदेश दे रही हो।

सूर के ही शब्द मे सुनिये—

"एक ही गाम को बास धीरज कैसे कै धरौ।
सूर सकुच कुल कान कहॅा लग आरज पन्थ डरौ।"

× × ×

यह सब साकार चित्र है। विरह का अत्युकृष्ट चित्र है। किन्तु मीराबाई के वर्णन मे एक विचित्र अनुभूति है।

"माई म्हॅारी हरि न बूझी बात।
पिंडमे से प्राण पापी क्यूं निकल नहि जात।
सुपन मे हरि दरस दीन्हो, मै न जाण्यो हरिजात!
नैन म्हॅारा उघड़ि आया रही मन पछतात!"

× × ×

विरह का इतना स्वाभाविक उत्कृष्ट उदाहरण
नारी हृदय से ही निकल सकता है।
गीले कपड़े निचोडने पर ही—
नीर निकल सकता है।

नारी हृदयने अनादि कालसे
विरह जनित पीड़ा का अनुभव किया है .....
उस सरस अनुराग मय हृदय में
सनातन से यह बीज उगा है।
यह आवश्यक नहि कि प्रियतम पृथक् हो,
तभी ही विरह उत्पन्न हो।
"अंके स्थिताऽपि" प्यारी जी श्यामसुंदर कीं गोंद में
शयन कर रही हैं।
उनके सुंदर वक्षःस्थल पर उनका सिर रक्खा हैं,
फिर भी वे विलाप में प्रलाप करती हुई रुदन कर रही हैं।
श्याम सुंदर बारंबार कहते हैं—
"प्यारी! मै तो यही हूँ!
तुम्हारे अंग से अंग सटाये बैठा हूँ,
तुम किस श्यामसुंदर के लिये आँसू बहा रही हो!"
किन्तु वे सुनती ही नही।
नारी के हृदय में विरह अनुप्राणित है,
विरह उसका जीवन है!
तभीं तों कबीरदासजीने गाया है—
"विरहा विरहा मत कहो विरहा है सुलतान।
जिहि घट विरह न संचरे, सो घट जान मसान॥
विरहिणी अबलाने अपना सम्पूर्ण हृदय काढ़कर रख दिया हों।
अतः मै कहता हूँ विरह नारियों की ही सम्पत्ति है।
और वे ही सर्वाधिक रूपमें उस के लिखने की अधिकारिणी है!
प्रस्तुत पुस्तक चिरंजिविनी निर्मलदेवी की-श्री श्यामाजीकी
श्री हरि के प्रति अपनी निज की विरह व्यथा है

विरह में निकले अनंत अश्रुबिंदु, कणो में से
विरल अश्रुमोती पिरोकर श्री श्यामा ने
'श्री हरि विरहमाला' बनाई है!
अश्रुओंकी माला होने से
रूखी अँगुलियो के काम की नही है,
रूखी उँगलियो से तो वह मुरझा जायेगी।
उँगलियाँ ही उसे सोख लेगी।
सुकोमल और सुस्निग्ध उँगलियो में ही यह माला टिक सकेगी।
अनुष्टुप् छंद मे हिन्दी भाषा में यह माला पिरोई गई है।
हिन्दी भाषा मे प्रायः संस्कृत के इस छंद का प्रयोग होता नहीं,
देवी निर्मल श्यामा की यह नई सूझ है
यह सूझ वहुत सराहनीय है।
यह विरह माला 'विरह गीता' है
देववाणीकी छाया से हिन्दी भारती मे एक नई झलक ललक रहीं है।
और संस्कृत के अनेक छंदो में,
संगीतमय गेय पदों में ही,
अनूठे अगद्यापद्य मे भी
लेखिका की हिन्दी भारती सरिता बह रही हैं!
गुर्जरबाला की इतनी सुहावनी रसीली, उत्कृष्ट प्रकार की हिन्दी
वह एक अकल्पित आश्चर्य ही है!
ऐसा दृष्टांत रूप प्रसंग सिर्फ मै ने यह एक ही देखा है।
हिन्दी समाज के लिये यह गौरव - बधाई की बात है।
भाग्यवती हिन्दी के महाअभ्युदय के लिये
ऐसे प्रसंग को हमें सम्मानित करना चाहिये।

ऐसी देवकी सी दुहितादेवी,
देवी भारती माका मुख उज्जवल कर रही हैं।
मालाएँ अपने गुणरूप से
भिन्न मिन्न प्रकार की विशिष्टताएँ लेती हुई है।
कही भी किसी छंद मे भी व्यतिक्रम नही पड़ा हैं।
अनुष्टुप् छंद का भी
बहिरंग कलामय लेखन प्रकार भी
निसर्ग पदार्थों की तरह सहज साकार
हुआ दिखलाई देता है।
इन मालाओं मे अलंकार अर्थगांभीर्य, भाव चमत्कृति
अनुभाव, अनुभव हृदय के ठोस भरे हुए हैं।
विरह वेदना तो प्रत्येक पद से अनेक स्वरूपों मे
फूट फूट कर निकलती दिखाई देती है।
विभाग एक से एक बढ़कर है।
उसमे किसको ज्यादा अच्छा कहूँ ! ?
पाठक पढ़े प्रत्येक पंक्ति को ध्यान से !
रसिक विज्ञ भावुक हृदय में स्वयं ही
कृति मे छिपा हुआ महारसस्रोत उमड़ेगा।
गीतों का गान नारी हृदय की आह में ही समा है।
देवीजी श्री निर्मल मैया के पुण्य प्रयास की —
अनायास बह गई इस 'निर्मल यमुनाधारा' की —
पुनः पुन: प्रशंसा करता हूँ कि —
परम पिता परमात्मा के पाद पद्मो में प्रार्थना करता हूँ कि
श्री श्यामा-निर्मल भगवती, भगवती भारती के भंडार को
सतत भरती रहे ! . .....

प्रेम का अधिकांश भाग विधाता ने स्त्रियो को ही दे दिया है।
तभी तो ब्रजरस के परम रसिक श्री परमानंद स्वामी ने गाया है।
"गोपी प्रेम की धुजा।
जिननि गुपाल किये वश अपने, उर धरि श्याम भुजा।
शुकमुनि व्यास प्रशंसा कीन्ही उद्धव सन्त सराही।
भूरि भाग्य गोकुल की वनिता अति पुनित जगमांही।

× × ×

उन गोपियो के प्रेम की झलक
देवी-मैया-श्री-श्यामाजी की निर्मल वानी में सुनाई देती हैं।
इस कृति की समालोचना क्या!?
भावलोचनों से ही यह स्व संवेद्य तत्त्व है सत्त्व हैं!!
रसेश्वरी के मूर्तिमान रस को नमस्कार मात्र!
लेखिकाका-श्री निर्मल श्यामा का, श्री श्यामा चरण भावुका
श्री हरि विरहमालामें भावद्रव्य सेविका का, पाठक, पाठिका का
मंगल हो!

"धनि निशदिन धनि विरह सुख विरह गान अतिधन्य।
धनि ब्रज वनिता मे जो जग भई अनन्य॥
बिरह वेदना, टीस, दुःख ज्हाँ कल्पना मान।
मिल हि न साधारण जनन तिनि ब्रज वनिता जान॥"

संकीर्तन भुवन-प्रतिष्ठानपुर प्रभुदत्त ब्रह्मचारी
झूँसी, प्रयाग (उ. प्र.)
ता. ३-१०-५७ आश्विन शु. विजयादशमी।
गुरुवार, विक्रमी २०१३.

श्री संख्या

卐 卐 卐

श्री हरि विरह माला

समग्र श्री श्लोक संख्या	१०७४
सर्वांगीय श्री उपविभाग संख्या	२००
सर्वांग श्री विभाग सख्या	१३
समस्त श्री माला सख्या	९
संपूर्ण श्री पृष्ठ संख्या	३३६
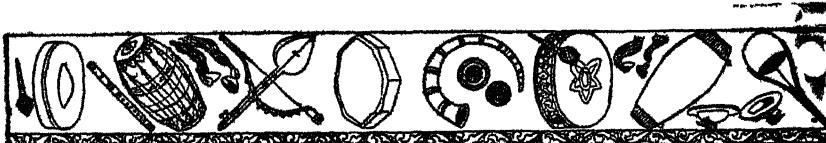
व. कृ. ५, रवि मध्याह्न
१९ वी मई बोरीवली

卐

श्री पृष्ठ संख्या

卐
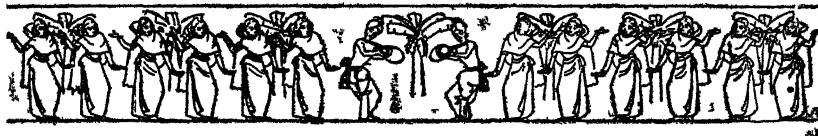
श्री श्लोक संख्या

प्रवेश भाग

अनंत के चरणों मे	८
अमृताभिषेक-स्वस्तिवाचन	१६
पुरोवचन माला	१०८
चित्र माला	१०८
माला गति	२२
श्री की भी तिरछी छबि	५६
श्मामाश्याम) 卐	३१८

卐 श्री हरि विरहमाला 卐 स्वस्तिक १

मोक्तिक माला 卐	१०८
नीलम माला	१०८
स्फटिक माला	१०८
सुवर्ण माला	१०८
वलय माला	१०८
भव माला	१०८
सायुज्य माला	१०८
	७५६

प्रवेश भाग	३१८
श्री हरि विरहमाला	७५६
	१०७४ समग्र संख्या

श्री उपविभाग संख्या

प्रवेश भाग

१ अनंत के चरणों में	१
२ अमृताभिषेक-स्वस्तिवाचन	१
३ पुरोवचन माला	२१
४ चित्र माला	१२
५ माला गति	५
६ श्री की भी तिरछी छबि	२३
	६३

श्री हरि विरहमाला

१ मौक्तिक माला	१४
२ नीलम माला	१९
३ स्फटिक माला	२४
४ सुवर्ण माला	१७
५ वलय माला	१७
६ भव माला	२४
७ सायुज्य माला	२२
१३	१३७

प्रवेश भाग	६३
श्री हरि विरहमाला	१३७
	२०० सर्वांगीय संख्या

श्री विभाग संख्या १३

श्री उपविभाग संख्या २००

卐 卐

卐 卐 卐 卐 卐 卐

卐 卐

श्री सूचिः

पुरोवचन माला

क्रमांक पृष्ठ सख्या

उपविभाग सख्या २१

卐

चित्र माला

माला गति

श्री की भी तिरछी छवि !

क्रमांक उ. वि. स. २३ पृ स

卐

मौक्तिक माला [१]

क्रमांकः 卐 उपविभाग संख्या १४ पृष्ठ संख्या

नीलम माला [२]

क्र. वि सं १९ पृष्ठ संख्या

स्फटिक माला [३]

उ वि. स २४ पृष्ठ संख्या

卐

सुवर्ण माला [४]

उ. वि. सं १७ पृष्ठ संख्या

卐

वलय माला [५]

उ वि स० १७ पृष्ठ सख्या

卐

भव माला [६]

उ वि. स० २४ पृष्ठ संख्या

卐

卐
卐卐

सायुज्यमाला [७]

उ वि. सं॰ २२ पृष्ठ सख्या

卐

श्री

श्री अंजनी-सुत-जयंती

वि. सं. २०१२

ता. २८/४/१९५६

बुध

बम्बई

निर्मल-जन्म-सदन

इस से क्या मोठे राजा ? मनाती आज आ सखे !

* अनंत के चरणों में *

[अनुष्टुप्]

मेरी
सद्ग्रंथि के
कंथ !
ग्रन्थ
अर्पित
हो रहा !
ग्रंथ-निर्ग्रन्थ-ग्रन्थि से
रस-ग्रथित
तू
रहा ! ! ॥१॥

२

मन मंथन सत्वों में

स्नेह का—

नवनीत है!

नवनीत प्रभो मेरे!

नवीन

नित्य, गीत हैं! ॥२॥

※

हे गोपेन्द्र!

कहूँ

कैसे!?

'मेरा अर्पण लीजिये'

तेरा है—

सब

तू ही

है

दिल दर्पण

दीजिये!! ॥३॥

पाने के ही लिये तुम्हें
तप
करे कुमारिका !
तेरा प्रसाद् पानेको बनाती
स्तोत्र कारिका ! ॥४॥

किशोरी कन्या का तो भी तेरी-
कुलवधू सखे !
किशोर ! मनके मोर ! बाला व्रजवधू सखे ! ॥५॥

गोप किशोर ! आओजी !
खेलने के लिये पिया ! बुलाती रसवाला है
मधु के मोलमें जिया ! ॥६॥

कवयित्री नहीं हूँ मैं
कविता हूँ
वियोगकी !
कविता सविता ही है
व्रजचंद्र वियोग में ! ॥७॥

तद्द्योतिः दाहकं श्यामा—वामा—वामेऽम्बुजे वरे !
शामकं विरहे दाहे कमलं दक्षिणे करे ! ॥८॥

ता. १४ / ७ / १९५७

मुंबापुरी

रवि. ऊषा

आषाढ. कृ, २, २०१३

卐 अमृताभिषेक—स्वस्तिवाचन 卐

रसा
रसार्द्र होती है !
हर्ष आँसू बिखेरती !!

वसुमती बलैया ले
प्यारसे पुचकारती !

[१]

देवी सरस्वती मैया
दिलको
दुलरा रही !

लाड़िली लड़कीको सो
लाड़ से
हुलसा रही !!

[२]

अपनी बीन को +बाजू रक्खे ही सुनती रही ।
निर्मल बीन को ×बाजू धरते खेलती रही ।

[३]

सौंदर्य की अधिष्ठात्री इन्दिरा जलवंशजा,
बहती
श्रीश-सेवामें आत्मसौंदय-अंशको ।

[४]

+दूर ×पास

संसार दुर्ग में
दुर्गा दुर्गति हरती रही।
अंतर रिपु-संहार श्रीकाली करती रही!

[५]

शिवा, सीता त्रिलोकी की आलोक पुण्य मूर्तियाँ,
शिवद, सित सौभाग्य
देवें सद्भाग्य पूर्तियाँ।

[६]

वसिष्ठ, वाल्मीकि, नंद*
आनंद धारको वहें।
श्रीसूर तुलसी चंद
चंदन सार को वहें।

[७]

पितृलोक निवासी हे!
सृष्टि के आदि कालसे-
अद्य पर्यंत जन्मों के पितृगण त्रिकाल वे-

[८]

*પ્રિયનંદનના પિતા

सुनिये हरिमंत्रों को भव्य भाव हरे भरे !

और दें आशीषें तृप्त

पुण्य नेत्र—हरे; हरे !

[९]

मानवकुलसे

मेरी, मुक्ति हो !

पूज्य पितृ हे !

करती नित्य पूजामें

पुण्यतर्पण

भक्ति से !

[१०]

अंजलि

कृति को देती

सजल जलमातृका ! ?

अञ्जलि या प्रिया लेती

श्री विरह सवितृ सी ?!

[११]

तटों से बहती मेरे
वृत्ति तट भिगो रही ? !
कालिन्दी सुरगङ्गा सो
तटाञ्चल भिगो रही ! !

[१२]

श्री अङ्ग-सङ्ग-रङ्गाएं
मेरी
आराध्य गोपियाँ !
मेरी वे सखियाँ प्यारी
वर दें
रसमूर्तियाँ !

[१३]

मन निधिवनों में
श्री; राधारानी
कृपा बहें !
श्री कृष्णचन्द्र-साम्राज्ञी
अमृतस्रोत को
बहें !

[१४]

श्री पुरुषोत्तम पादों को
चूमने
रसमालिका;
छोटे मृदुल हाथों में
लिये श्रीमाल
बालिका—

[१५]

चली ही जा रही एक
भोली भाली
कुमारिका !
परम पुरुष श्री की
भावार्द्र
अभिसारिका !

[१६]

बो
मार्गशीर्ष पूर्णिमा री शुभ्र मध्याह्न
व
वि. सं. २०१५ ली २६ वी दिस. १९५८
मोहमयी

पुरोवचन माला

प्रियदर्शी पाठकों को

卐 पुरोवचनमाला 卐

[अनुष्टुप् वृत्त]

卐 अनुष्टुप् में अनुष्ठान 卐

॥१॥ हरिविरह की गीति

गीता के छंद में बही !

करुण रसमूर्ति या

अरुण +चरणा रही !

॥२॥ वाल्मिकि मुनि–नेत्रों से

करुण करुणा भरे—

योग में जन्म पाये हैं

श्री अनुष्टुप्–प्रिय स्वर !

+પ્રેમનું ચરણ, કાવ્યનું ચરણ.

卐 उपक्रमोपसंहार 卐

॥३॥ तन धारण से पूरी
तन बदलने तक,
हरिविरह की पोर चलती वंदना तक !

॥४॥ +'जन्म' शब्द शुभारंभे
'श्री ×सायुज्य' समाप्तिमें,
'माला'के मनकों को यूँ
मिलाना रसगुप्तिमें ॥

॥५॥ वेदना वंदना के ही
चरणों में विराम ले !!
सरिता बहती जाती रससागर में मिले !

॥६॥ 'उपक्रमोपसंहार'
नहीं; विहार–हार वे !
क्या उपक्रम भी मेरे
उप – समीप सार से !

॥७॥'अभ्यास औ अपूर्वादि मध्यन्यास अपूर्व है॥
श्लोकक्रमव्यवस्था में विक्रम रस पर्व से ॥

+मौक्तिकमाला १ श्लोक ×सायुज्यमाला

卐 रसदेव–दान 卐

॥८॥ +कवयित्री नहीं कोई

मैं तो हूँ

का'न–किंकरी !

न समालोचिका भी हू

भावलोचन किन्नरी !

नया कोई

इस में मोड़ है नहीं ।

जीवन होड़ में मेरा

मधुर मोड़ है यहीं ।

॥१०॥ प्रियतम प्रसादों से

श्रीइन्दीवर–यादमें ।

धरें प्रवास–पुष्पों को,

श्यामसुन्दर — पादमें ।

+अनंत के चरणों में श्लो. ૭, જુઓ 'અર્પણ પત્રિકા.'

॥११॥ लिखे हैं लेखनीसे क्या ?

नहीं; ये तो लिखे गयें !

श्रीहरिने लिखाये हैं

विरह – दान दे गयें ।

॥१२॥ लिखें यूँ, लिखती मैं न

यान में, स्नान पान में

मेरी वत्सला माताशारदा – वरदान से !

॥१३॥ प्यारी निर्मल पुत्री के हस्तों से

ये बहें गये ।

मैया—उत्सङ्ग में मेरे

सुप्रभात सदा भये ।

॥१४॥ खेलती खिलती...तेरी

'श्यामा' में लेखनी पनी !

'भूमा' की भूमि ही मेरी

भूमिका रोशनी बनी !

॥१५॥ महा विराट की भूमी सर फलक सी बनी !

प्रत्येक वस्तु ही वस्तु रस झलक सी मनी !

॥१६॥ नहीं है ग्रंथ मेरे वे; फिर भी मनुरीति से ।

पष्ठी विभक्तिका वाक्य

मात्र

शब्दज नीति से ।

॥१७॥ लिखता प्रिय रासेन्दु

नहीं हूँ कोई लेखिका ।

यहा से मैं

वहाँ रक्खूं

परम—पद—सेविका !

॥१८॥ प्राणों में

प्रेमकी बोली !

हूँ प्रतिलिपिका यहाँ ।

प्रतिलिपि करी बाला

प्रणेत्री

हो सके कहीं !?

卐 स्वयम्भू भावना 卐

॥१९॥ नहीं है साम्प्रदायिकी,—मति
ना मतमें मिली।
मति रूप
न मेरा है,
मति
चिन्मयमें खिली!

॥२०॥ स्वयम्भू भावना मेरी
जन्म के साथ जो चली!
श्याम प्रियार्द्र रीति श्री
बाल—संज्ञान में
घुली!

॥२१॥ मति का जो प्रमाता है
प्रमेय औ प्रमाण भी।
औ मति की अधिष्ठात्री, मैया का
हिय दान है!

卐 हिन्दी कृति 卐

॥२२॥ कारण देह की मेरी, वागूदेवी
सुरभारती !
स्थूल शरीर की मेरी, गौर्जरी
लोकभारती ।

॥२३॥ हूँ हिन्दी की न अभ्यासी
हिन्दी है
हिय–आरती !

सुरवाक् – सुर छाया में
भरती हूँ
पिय – आरती !

॥२४॥ वसन देवभाषा के
हिन्दी के
शृंगार में ।

आभूषा प्रेमकी धारे
सुहाती

रस हार सी ।

卐 साहित्य-सङ्गम 卐

॥२५॥ सहेली तालको देती गीर्वाण हृदयङ्गमी ।
गौर्जरी और हिन्दीका
होवे साहित्य-सङ्गम ।

॥२६॥ हिन्दी अभ्यासमें, धीरे; गिरा गुर्जर के ऋणी-
पावे सहज उत्कर्ष
दी हैं पर्याय-टिप्पणी ॥

॥२७॥ अनंत टिप्पणी मेरे,
अंतर वनमें बही !
परंतु °अर्थसीमा में
•श्री अर्थ
×घन सा रहा !!

○ "श्रीहरि विरह माला"ના પ્રકાશન માટે ધરાયેલ દ્રવ્યની માપબંધી

● શબ્દોમાં છુપાયેલ સૌંદર્યશીલ અમાપ અર્થબંધ

× ઘનીભૂત અર્થ, હૃદયધનરૂપે,

卐 शिक्षिका शारदामैया 卐

॥२८॥ हिन्दी के अज्ञ या सुज्ञ, कोई भी ज्ञानवंत को,

कृति–सलाह पूछी ना, क्या कहूँ रसवंत को।

॥२९॥ पूछूँ तो भी किसी को रे अर्थप्रधान विश्वमें ?!

सभी ही है स्वअर्थों में रूढ हैं काल अश्व पें :

॥३०॥ कोई राजेन्द्र, मंत्री को कवि, लेखक बंधु को,

पूछुं क्या सरलाबाला, सवाल रससिंधु से।

॥३१॥ वाणिज्यप्रिय वंशों में नाम भी इसका कहाँ ?

आनुवंशिक माया से काम मेरा नहीं वहीं।

॥३२॥ गोपी–वांशिक छाया में बहाता है रसेश्वर !

रस आंशिक काया से धरती है रसेश्वरी !

॥३३॥ होती प्रश्नोत्तरी मात्र मेरी शारद मात से,

प्रीति के पात्र पुत्री को बताती बातबात में।

卐 आगे पीछे 卐

॥३४॥ आगे पीछे कभी होता
पीछे आगे कभी बने ।
आगेवाला कभी आगे
पीछेवाला विराम ले ।

॥३५॥ 'हरि' – विरह माला की
भूमि के पृष्ठ भागमें ।
भूमिका ग्रंथ के ग्रंथ
छिपें कुटिर – भाग में ।

॥३६॥ कपाटों में छिपा कैसा
रे, अप्रकाशित कोष सो ।
अंतःकपाट से आया
प्रकट प्रभु–तोष सा ।

॥३७॥ श्री लीलानाथ के रम्य, अगम्य, पुण्य बंध्य जो,
हैं अहैतुक संकेतें होते हैं गण्य धन्य सो ।

॥३८॥ पश्चात् लिखी गई माला
पूर्व आई प्रकाश में !
गुप्त वें ग्रंथमालाएं
जपती जाप राशि को ।

॥३९ आगे पीछे कहाँ क्यों ही ?
पीछे आगे
नहीं दिखे !
क्या रस के कटोरों में
आगे पीछे
कभी दिखे !?

卐 श्री १। 卐

॥४०॥ श्री सवा लिख के धन्य
शारदा—धन—पूजनें
प्रारंभित सदा त्यों ही
माला—शुकन चंदनें !

॥४१॥ 'माला' को छपते पूरा
सवा वर्ष लगा अरे,
छपें ग्रंथ सवाये ही
सवाये ग्रंथ हो हरे !

॥४२॥ मुद्रणालय की, छाई
गति शांत प्रलम्बिता।
विरह छाय का, छाया—
चमत्कार विलंब में !?

॥४३॥ धीर पाठक सद्भागी
अधीर नित्य हो रहें।
मुद्रण—मंत्र ना जानूँ
मंत्र ग्रंथ भले रहा।

卐 श्री यंत्र 卐

॥४४॥ पुरोवचन माला भी त्रिरंग ऋतुमें रहीं।
कृति दो वर्ष यंत्रो में प्रकाश चाहती रही।

॥४५॥ कहीं है ह्रस्व का लोप,
कहीँ बिन्दी तिरोहिता।
मानो प्रत्यय से सूत्र
जानो यंत्र तिरोहित !

॥४६॥ श्री यंत्र श्लोक तू जान;
मंत्र रूप सुतोष को,
यंत्र मुद्रण तापों का
धरो सुविज्ञ रोष ना।

卐 क्षतियाँ या रस अक्षतें 卐

॥४७॥ क्षति कोई न हो पावे यही उत्कट भाविनी ।
तोभी न तंत्र मेरा है क्षति हो पुण्य पाविनी !

॥४८॥ मानव–ज़िंदगानी में
लाचारियाँ कई रहीं
और हृदय की मस्ती
बालाकी हरि में रही !

॥४९॥ एसे संभाव्य योगों में क्षतियां भी कभी बनें
तो भी
श्री श्याम–पूजा में
रस–अक्षत
ही
बनें !

॥५०॥ रस–संगम–योगों में
क्षति स्वारस्य–भागिनी !
उलटे बीज की शोभा, रसा की रस रागिनी !

॥५१॥ टेढी लकीरभी मेरी है सौंदर्य रसाकृति !

श्री पुण्यश्लोक के श्लोक

आलोकित करो कृति !

॥५२॥ अपूर्ण—मानवी बाला

अपूर्ण पद पूर्तियाँ।

तो भी हो

पूर्ण की शोभा

"पूर्णात् पूर्णमुदच्यते"।

॥५३॥ अच्छा है तो उसी का है

महिमामय देव का।

मानती क्षतियाँ मेरी

तो भी

अक्षत भाव हैं!

॥५४॥ मेरी जिम्मे नहीं है ही, तनिक, प्रिय पाठक !

श्याम उत्तरदायी है—

हृदय—लिपि—लेखक !!

卐 सम्मति 卐

॥५५॥ भले वे प्रेम से छापें

लेकर शुभ सम्मति ।

लेखिका—ग्रंथ उल्लेख

रक्खें मानव सन्मति।

॥५६॥ कृति को स्नेह से लेवे रास, उत्सव रंगमें ।

प्रणेत्री पुस्तकों के भी

होवें निर्देश—सङ्गमें ।

॥५७॥ अनामी

भावना मेरी

कल्पना भी न

नाम की।

ग्रंथ सिलसिले से ही

सूचना स्नेह धाम सी ।

卐 साहित्य–धन–अपहर्ताओं को 卐

॥५८॥ 'निर्मल–ग्रंथ माला' के पूर्व प्रफुल्ल फूल को

ग्रंथ–मासिक–पत्रों मे जो प्रकाशित फूल सो–

॥५९॥ अपने नाम से छापें बेचारे कुछ लोग ने,

मृषा ही मार्ग सो पूरा,

दया के पात्र रोग है ।

॥६०॥ संग्राहक बनें धन्य, क्यों श्री सर्जक वे लिखें ।

दो हाथ जोड़ते मेरी प्रार्थना प्रीति से लिखी ।

॥६१॥ एसे "एकात्म भावों" की

नहीं कोई करे कृपा ।

व्यर्थ से पल खोने में आती है करुण तृपा ।

॥६२॥ विस्मय उस में क्या है

भव ही भ्रम–संभव ।

परंतु है नहीं इष्ट साहित्य–वृत्त–संभ्रमें ।

卐 स्वायत्त ग्रंथाधिकार 卐

॥६३॥ है स्वाधीन

त्रिलोकी को

काव्य का रसपान ही,

छायें विराट रूपों में

हैं अनुस्यूत गान वे ।

॥६४॥ आराध्य अधिकारी है

श्री परमेश जो रहा ।

अक्षर—अधिकारों से

अ-क्षर दुःख हो रहा ।

॥६५॥ परंतु परिपाटी से लिखना पड़ता अरे ।

आधीन

लेखिका को ही

ग्रंथ के

अधिकार हैं !!

卐 सप्तमाला—सप्ताहें 卐

॥६६॥ 'हरि—विरह—माला' के

प्रकाश पूर्वे वे स्वर।

गुंजे गुर्जर भू में वे भावकुंज मनोहर।

॥६७॥ सुंदर सातवारों में सप्ताहें भी अहा हुई।

'श्यामा' श्री सप्तमालाएं राह हार बहा गई।

॥६८॥ श्रोतृवृंद सुभागी वे सुनते थे रसमग्न हो,

श्रेय भी उनका होवे झेलते ध्यानलग्न जो।

॥६९॥ असंख्य आत्म के पुण्य नयनों से निर्झरी वही।

सुकृती स्नान करते थे

या कृति स्नान में रही?

॥७०॥ विरमे या

बढे बुद्धि

बुद्धिश्री बुद्धिमान की।

चलित स्थिर होते थें

स्थिर भी गतिमान रे।

॥७१॥ सभा मंदिर होती थी !

गृह भी रसपुंज से !

मार्ग वे भर्ग होते थे ।

गलियाँ रसकुंज सी !

॥७२॥ लता औ पान वे पेड़ भित्तियाँ अवकाश भी

सुनते तृप्ति पाते थें ..

नहीं, अतृप्ति; काश रे !

卐 आतिथ्य 卐

॥७३॥ हुए भक्त समाधिस्थ !

थे वैज्ञानिक भर्ग में !

भूलें प्राचार्य शिक्षा को।

औ प्राध्यापक; वर्ग को !

॥७४॥ राज्यश्री राजवी भूलें ! ज्ञानी भी ज्ञान मंत्र को !

मंत्री भी मंत्रणा भूलें !

तंत्री भी पत्र तंत्र को !

॥७५॥ माताएं

गृहकार्यों को

घंटों ही

भूलती रहीं !

हरि-विरह के हाव

घंटी सी

झेलती चली रहीं !

॥७६॥ यदि एसी स्थिति नित्य पासके मनुजात्म जो,
विश्वप्रवास में सत्य
पावें श्रीपरमात्म को।

॥७७॥ मेरी पर्णकुटीरों के आतिथ्य मनु–मान में,
उभय यजनों में है
भाव भोजन गान का।

॥७८॥ आशंसा तो नहीं ही है यथार्था है प्रतिकृति।
आशंस्य यदि है तो भी श्याम शब्द रसाकृति।

॥७९॥ मै नहीं,
नव मेरा है,
मेरा नहीं प्रभाव है।
प्रकाश रूप का पूर्ण
मात्र एक
स्वभाव है।

卐 नभगङ्गा* 卐

॥८०॥ +रसवती बनाते भी

कृति ×रसवती

वही !

जलाहरणमें ' श्यामा '

-जलज रचती रही !

॥८१॥ लेख साधन की प्यारी कला—कलाप—सेवमें,

अप्रकाशित *पुष्पों से धूलि मार्जन—सेवमें,

॥८२॥ निर्झरी मुक्त—उन्मुक्त—विमुक्त

कविता वही !

' निर्मल ' नभगङ्गामें

सुधांशु सविता

वहें ।

+ રસોઈ-ઠાકોરજી માટે રાજભોગ, દેવી સરસ્વતી માટે નૈવેદ્ય. ×રસવતી કવિતા. -ભાવનાનાં કમળ-કાવ્યો.
*અપ્રકટિત ગ્રંથોની પુષ્કળ ફાઇલો-પાંડુ લિપિ.

卐 स्वस्ति 卐

॥८३॥ सर्वात्मभाव से सौम्य 'श्यामा' की समुपासिका !
'हरि–विरहमाला' की
है एकांत सुवासिका !

॥८४॥ शांतमूर्ति विशाखा सी
है एकांतिक भासिका !
निर्मल–प्रीतिपूजा में नयनामृत लासिका !

॥८५॥ मधुमधुर 'माला' का मृदुल सुर शांति से,
सुना है शांत गोपीने
व्यवहार अशान्ति में !

॥८६॥ करी हृदय–चित्ताने चित्तजा
ग्रंथ–सेवना,
ज्यादी 'विरहमाला' की मानसी रस–सेवना।

॥८७॥ 'माला' को मन आत्मा के
प्रशान्त तल्प में धरी !
स्वल्प श्री पाखुरी पूरी,
अनल्प भांव से धरी !!

॥८८॥ एक ही

वह पर्याप्ता

निर्मल स्नेहराशि सी,

सारे निर्मल—पुष्पों की

होनो चाहे प्रकाशिका—

॥८९॥ परंतु हन्त, हंत 'श्रो' बंदीवान बनी जहाँ।

विवशा करती पूजा आँसू

अंतर में वहाँ।

॥९०॥ श्रीपति पाद में चाहे

सुश्री के विनियोग को

नहीं सो कर पातो है, सहती दुःख योग को।

॥९१॥ हिन्दू संसार में पूरी छाई समर वेदना।

इन्दु सी सार लेखाएं जीवन—

रस वेदना।

॥९२॥ एक विरहमाला के ग्रंथ श्री—विनियोग में

अनेक ग्रंथ तू मान; हे श्याम !

शिव योग में।

॥९३॥ प्रिय पुजारिनी शांत
या अशांत हिया कहूँ ? !
उस ऊपर हे नाथ !
दया के दान दो महा !

॥९४॥ क्या कहूँ वह है क्या सो
छोटी सी बात या बड़ी ! ?
जीवन—दुःख सुखों के काल में जो
बनी कड़ी !

॥९५॥ अपना नाम देने की मनाई उसकी कड़ी ।
राधा—कर कड़ी होवे
उसके हाथ की कड़ी !

॥९६॥ तो भी नाम छिपा कैसा
'स्वस्ति स्वस्तिक' मे
यहाँ !
पुजारिनी चिरं धन्या, है आत्मसखिरी यहाँ !

॥९७॥ पाठक बुद्धि से खोजे उपमा ज्ञान में लपी ।
व्यूह में ब्रह्मखेलों सी
'संज्ञा' विज्ञान में
छिपी ।

卐 स्नेह सत्कार 卐

॥९८॥ वंदना विबुधों को है भारती—पदभक्त जो।
प्रणति लेखकों को हैं साहित्य पाद रक्त जो।

॥९९॥ आपकी कृतियाँ मेरी शिरसावन्द्य नेह सी।
आपकी दिल—डालों से मंगल पुष्प चाहती।

॥१००॥ कवि—हृदय--वालों को
देखती हूँ जहाँ, यहाँ,

वत्सल कर
मेरे ये
फूल बिखरतें वहाँ!

॥१०१॥ हिय से

सहलाती ही
भावुक मन को सदा।
दिल से दुलराती मैं
बरसूँ कल्याण कौमुदी!!

卐 आपन अपने में 卐

॥१०२॥ विख्यात लेखकों में से या प्रिय कवि यूथ में

स्पर्धा नही किसी की है

मन–जीवन--पंथ में ।

॥१०३॥ मैं किसी से बढ़ूँ या कि

छोटी मैं ओर से रहूँ;

नहीं विचार दोनों हैं,

न किसी

बाजू मे

रहूँ !

॥१०४॥ बहती हूँ समानों में !

बीती हूँ आसमान में !

रोती पाताल--कोनों में !

सोती गगन–गान में !

卐 अनंत की अभिसारिका 卐

॥१०५॥ कन्हाई ही कहानी में !

या कहानी कहान में !!

गोविंद–गुण गानों में

बानी हो

पुण्य पाविनी !

॥१०६॥ बेचारी बावरी बुद्धु

बाला के बोल सूक्त हो !

अबला–सम्बल श्याम

मोहन–मन–मौक्तिक !

॥१०७॥ बाला बालकृति श्रीभी

है

रसशास्त्रकारिका !

श्याम द्
र
श रासों में
श
र
द् नभ–तारिका ! !

॥१०८॥ पनिहारी 'रसो वै सः'
प्रेम की अभिसारिका !
सुहाती रसकुंजों में
आत्मा की
रससारिका ! !
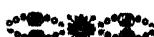
श्री दत्त जयन्ती बुध–मध्यनिशा
मार्गशीर्षा चतुर्दशी–२०१५
ता २४ दिस. १९५८

पार्वती निवास न १० रोशन नगर
चन्दावरकर रोड़–बोरीवली (पश्चिम), बम्बई

चित्रमाला+

+चित्रमाला पढते समय चित्रमालामें उद्धरण किये हुए उपविभाग के शब्द चित्रों के उन पृष्ठोंमें उन पंक्तियों के लिखने के आकारों कों देखते जाने से-माने चित्रमाला का भाव शब्दचित्र और लेखन प्रकार चित्र के साथ मिलानेसे आकार में छिपे हुए रहस्य हेतुओंकी संगति बैठ सकती है।

चित्रमाला

卐 रसचित्रा 卐

चित्र क्यों रे अरे मित्र! चित्र तेरा स्वयं बनी!
मेरे हृदय का चित्र चित्रकार स्वयं बना!
॥१॥

इसी से क्या अहा तूने रक्खा अभाव चित्रका!?
विचित्र चित्र योगों में साथी तू बालमित्र हो!
॥२॥

असंख्य मित्र तेरे ही छाये फलक हार्द में!
असंख्य शब्द भी छोटा आया; झलक याद में!
॥३॥

मेरी हृदय रेखा में खींचा है प्राणमित्र तू!
या तो हृदय रेखासे खींचता आत्ममित्र तू!
॥४॥

रति है श्रेयसी मेरी
आत्म–सुरत
मित्र तू!
वृत्ति है प्रेयसी तेरी
'श्यामा' का
कांत चित्र तू!
॥५॥

卐 चित्ररसा 卐

संध्या के रंग के जैसे आप बिखरते गयें !
संधि की लालसा मे ही मेघ धनुष हो गयें !
॥६॥

अभि संधि सदा तेरी श्याही श्यामल हो बही !
स्याही के पहले ही तो पंक्ति निर्मल हो बही !
॥७॥

लिखे हैं क्या प्रयत्नों से मालाओं के स्वरूप को ?!
या तो क्या बुद्धिने सोचे धीनाथ हिय भूप सो !?
॥८॥

अनुष्टप् छंद लोकों में प्रायः दो पंक्तिमें छपें !
अलौकिक अहा छंद नैक रूप यहाँ छपें !
॥९॥

रम्य साकार रूपों में
श्री निराकार झूलता !
हर आकार में एक
रहस्य
गुप्त खेलता !
॥१०॥

卐 रह : चित्रा 卐

विरह शब्द चित्र श्री विन्यासों में अहा वही !
शब्दों के चित्र के चित्र न्यासमाला बता रही !
॥११॥

श्री विरह चितेरा क्यों दिखाई न पड़ा अरे !
विरहिणी, नहीं बाला चित्रलेखा अरे, हरे !
॥१२॥

यदि हूँ चित्रलेखा भी अंतर रूप रक्ति है !
रूपों को बांधने की तो तूलिका में न शक्ति है !
॥१३॥

वर्णन वृत्त गाऊँ क्या उसका नव पार है !
क्षितिज किरणों कोसो जाने क्षितिज पार जो !
॥१४॥

न्यासों सी न्यासमाला ही
तेरा
चरन–नूपुर !
अन्य विन्यासमालाएं
छूएंगी
रस–पुर में !
॥१५॥

卐 चित्र–सूत्रा 卐

श्यामा-सन्निधि में जो थें चित्रके +प्रतिरूप वे।
धरे हैं यंत्र शक्ति को तो भी न अनुरूप वे।
॥१६॥

निर्मल निधि मे श्री, श्री× छिपी हुई नहीं दिखे।
वर्ण विन्यास चित्रों को सत्कारो श्रीपते! सखे!
॥१७॥

वित्तजा* सेविका का जो 'द्रव्य' भाव अखड जो,
माला मुद्रित हो जावे श्री मर्यादित खंडमें!
॥१८॥

सचित्र ग्रंथ पुष्पों के होवें प्रकाशनें जभी!
सोहें वे रंग रेखा से काव्य सिंहासनें तभी!
॥१९॥

रंग रेखा सुहाये या काव्य के छत्र से जभी!
या दोनों वे सुहाएंगे भव्य वे मंत्र से तभी!
॥२०॥

+श्रीहरि विरहमाला ના ઉપભાગોને ભાગોમા છપાયલા શ્લોકો.

×નિર્મળ–ભાગ્યરેખામાં છૂપાયલી લક્ષ્મી વર્તમાનમા દેખાતી નથી; તેથી શબ્દાકાર ચિત્ર છબિઓને હે લક્ષ્મી પતે સન્માનો।'

*पुरोवचनमाला स्वस्ति મા નિર્દિષ્ટા ભાવુકા.

卐 सूत्र–चित्रा 卐

प्रत्येक आकृति श्री में शीर्षक रस हाव हैं !
उपशीर्षक ये मानों दर्शक सर भाव हैं !
॥२१॥

यदि स्पष्ट करूँ थोड़ा असंख्य पृष्ठ वे भरें !
अस्पष्ट हरि–लीलाके सकेताकार हैं भरें !
॥२२॥

अति अस्पष्ट रेखाएं तो भी मैं कुछ खींचतीं
आकार चित्र के भाव सूत्रमे सूक्ष्म बांधती।
॥२३॥

माला को पढ़ते, शांत
दृष्टि
गौर विचारमें
हेरे माला स्वरूपों में
तो पावे कुछ सार को !
॥२४॥

भाव को बांधता शब्द !
शब्दों को काव्य कृति !
काव्य आकार रेखा में
निर्मल—चित्र आकृति !
॥२५॥

卐 मौक्तिक माला 卐

'क्यों' मे आश्चर्य रूपों सा 'भिक्षा' मे रस मांग सा।
वचन 'याद' मे साद 'दशा' सिंदूर मांगसो।
॥२६॥

'चेतना' उभयाङ्गी है 'पूजा' विविध रंगसी।
'आह्वान' भाव की रेखा है आवाहन रंग सी।
॥२७॥

प्रिय 'पपत्ति' पत्तीमें हार्द रेखा यहाँ दिखे।
आनुषङ्गिक शाखा में 'अन्वेषण' कहाँ सखे!
॥२८॥

बाला का है 'उपालंभ' आत्मका परिरंभण।
'वियोग' यज्ञ 'वेदी' सी वेदी वंद्य भभूति है।
॥२९॥

'विप्रयोग' दिखाता है नभ मध्याह्न वर्णन।
'रस निर्वाण' का काल प्रशान्त रस मूर्ति है।
॥३०॥

'मुक्तामाला' पिरोई है रस चन्द्रक मध्य में।
चन्द्रको में प्रिया नाम छिपता रस अर्घ्य सा!
॥३१॥

卐 नीलममाला 卐

धन 'तिमिर' में भी ज्यों जैसा तारक मण्डल ।
पंक्ति रूप दिखे त्योंही रस तारक मण्डन ।
॥३२॥

वैभव को सजाया है 'रस वैभव' खंड में ।
'सम्बन्ध' बंध ये मानो आश्लिष्ट रस खंड से ।
॥३३॥

अपाङ्ग प्रांतसी लंबी 'दृष्टि सृष्टि' सुचित्रसी ।
दर्शन शास्त्र छाया में दर्शन वृष्टि मित्र सी ।
॥३४॥

होता सजीव 'जीवत्व' तीन रेखा लकीर में ।
कारण स्थूल सूक्ष्मों में आत्मा की एक पोर है ।
॥३५॥

'ऋतु' भ्रमण के जैसा पंक्ति भ्रमण भी दिखे ।
साज है सांध्यबाला के रंग रमण से सखे !
॥३६॥

श्री 'विधाता' दिखाता है पूर्व पश्चिम छोह को ।
दो दिशा की दशा छाई अन्तर टीस आह की ।
॥३७॥

नहीं प्रश्न विरामों में विराम मिलता सही ।
'मूढता' द्विविधा जैसी रेखाएं प्रश्न में रहीं ।
॥३८॥

अमूर्त एक आकार समस्या रस 'मूर्ति' में।
मूर्ति मूर्तिमती सो ही अंजलि भाव पूर्ति सी।
॥३९॥

'बावरे' की छवि कैसी अपनी मन मान सी।
टेढ़ी मेढ़ी अड़ी रेखा दिखे सनक सान सी।
॥४०॥

तन्वङ्गिनी कटी जैसी 'तनुता' अंशमें बसी।
रोई पातालमें प्रीति पुतली पतली, हसी।
॥४१॥

श्रीफल रूप के जैसी शुभारंभ विभाकृति।
मंगल कलशा मूर्ति 'मध्यमङ्गल' आकृति।
॥४२॥

हा, उत्ताल तरंगश्री 'उदधि' लहरा रहा?
उदधि या तरंगोमें आपमें लहरा रहा?
॥४३॥

आई क्या 'अभिशापों'से? या लोक-वरदानसे!?
क्या रही मर्त्य बाला या? श्यामा अमर गानसी!
॥४४॥

सप्तश्लोक बताते हैं सप्तलोक स्वरूपको।
भेदती सातलोकों को आ गई और रूप से!!
॥४५॥

'राख' के ढेर भी कैसे सजाये हैं कलात्मक।
राख शाख विशाखा सी अवला की कलान्मिका।
॥४६॥

'साम्राज्य' चार पायों के प्राणेश्वर सुहा रहें।
सिंहासन बना कैसा राजेश्वर सुहा रहें।
॥४७॥

त्रिकाल 'पूजना' के हैं आकार भी त्रिकाल से।
पूजा के द्रव्यही मानों बिखरें इक थाल में।
॥४८॥

मोहक मणि से मेरा भूषण मणि तू बना।
मोहनमणि से या तो 'नीलममणि' ही बना।
॥४९॥

卐 स्फटिकमालो 卐

श्री 'आवरण भङ्ग' श्री श्लोक लकीर की छवि।
श्री वक्षः स्थलमें मानो वस्त्रावरण की छवि।
॥५०॥

अपर श्लोक तीनों में श्री आवृत्त स्वरूप को।
कैसे सो खींचता कृष्ण दिखाता निज रूप को!
॥५१॥

'मनानो' में मनाने का तिरछा रम्य भाव है।
यहाँ वहाँ बहा मानो विरहानंद हाव में।
॥५२॥

'कमल कुटिया'में तो कमल छपरा दिखे।
क्रमशः भाव मंत्रोमें 'प्रतिष्ठा' भी यहाँ सखे!
॥५३॥

'स्वाति' नक्षत्रका पानी व्योम से गिरता चला।
'पुलकें पलकें' कैसी उन्नत भाल सी अली!
॥५४॥

'परम्परित'में कैसा विश्राम क्रमशः रुका!
बांधा 'कसक'में कैसा मानो खिसक ना सके।
॥५५॥

श्लोक जोड़ी बताती है मित्र युगल रूप को।
'पाद्य' के पद्यमे' छाया आराध्य स्थिति रूप है।
॥५६॥

श्री तरुतल छाया में सुरभी नंदनी खड़ी।
'काल' और 'कलाओं' में जैसे न्यासावली बडी।
॥५७॥

'रथपथ' लगे कैसा या पथ रथमें जहाँ।
'तिमिर मिलन'—श्रीमें रम्य आश्लेष है यहाँ।
॥५८॥

मनो विज्ञान—रेखा में 'पुष्पाञ्जलि' प्रहार सी!
मधु कोमलता प्यार बनता हिय हार सा।
॥५९॥

'स्फटिक' प्रतिबिंबों सी रसबिंबा स्वयं बही।
'गीति गति' सहेली सी पहेली चलती रही।
॥६०॥

'अनंत' 'भाग्य' से मानो रेखा सामुद्रिकी छिपी।
'वल्लरी' फैलती कैसी श्रीकांत रूप में लपी।
॥६१॥

'आत्मवरण' में छाया कैसा वरण रूप है।
बाला—संकोच—रेखाएं हिय हरण रूप हैं।
॥६२॥

'सुरमा' 'सुंदर' श्री में अपने नामका रूप।
अंजन विधि से लेना तो दिखे व्रजका भूप।
॥६३॥

卐 सुवर्णमाला 卐

मधुर 'गर्विता' दृष्टि पंक्ति लेखन रीति में।
'धारिणी' दृष्टि की सृष्टि श्रीगोवर्द्धनकी की स्थिति!
॥६४॥

पीछी श्री-धार के कैसी प्रिय अंगुलि में रहे।
'चितेरी' ही बनाती है पंक्ति झुकाव में कहे।
॥६५॥

कल्पना 'कवयित्री' में 'वीणा' का आकार भी।
श्री 'तिरोहित' रूपों में 'प्रांत' भी साकार है।
॥६६॥

'धारा' क्या है क्रियामें भी संज्ञा के द्विय रूप हैं।
चित्र प्रयुक्ति से खोजे रंग के रस रूप को।
॥६७॥

कन्हाई कांतके जैसी टेढ़ी मेढ़ी लकीर में।
खींचा चित्र 'कहानी' का जीवन रस पीर में।
॥६८॥

'साथी' में पंक्तियाँ साथी हैं परस्पर युग्म सी।
खानें छोटी 'तिजोरी' में 'आरती' ज्योति रश्मि सी।
॥६९॥

'अङ्गार' पात्र का दृश्य 'प्रिय 'अरुण' चाल भी।
'स्वर्णमाला' दिखे माला माला-आकार थाल में।
॥७०॥

卐 वलयमालो 卐

पद्म औ पद्म दंड श्री पंक्ति के प्रतिरूप में ।
'रसशिक्षा' छबि मानो सरका छवि रूप है ।
॥७१॥

'बेनी' के शिरकी शोभा आभा अक्षर में छिपी ।
'कुसुम' पँखुरी की ही बनाई 'मूर्ति' है छिपी ।
॥७२॥

'किंकरी' वाम दक्षिणा और सन्मुख भाग भी ।
श्लोक स्थिति बताती है प्रकार अनुराग भी ।
॥७३॥

श्री 'सत्कार' प्रकारोंसी श्लोको को भी दिशा बनी ।
सर्व स्वरूपमें प्यारे प्रेमा लोक दशा सनी ।
॥७४॥

सीधी साधी लकीरों में 'निगुर्णा'का प्रकार है ।
आरंभ अंत टेढ़ी जो 'सगुणा'का प्रकार है ।
॥७५॥

लिपटती हुई रेखा बनाती पधरावनी ।
'समित् पाणिः' प्रणामों सी 'शरण' में लुभावनी ।
॥७६॥

'दशा'मे स्निग्ध आँखोंकी रेखाएं कुक्षि में छिपी ।
'जादू' के खंड से मानो विभिन्न खंड हैं छिपें ।
॥७७॥

'तीर्थ' के घाटके जैसी श्री पंक्तियाँ यहॉ बनी।
'उच्छ्‌वास श्वास'की रेखा उत्तर भागमें सनी।
॥७८॥

सप्त अचल आकार 'निश्चल' भावना लिये।
'अचल' उपमा माला खंडन मंडनें लिये।
॥७९॥

विराम एक से अन्य अन्य में रमते रहे।
अंतराराम में वे तो 'तल्लीन' घूमते रहें।
॥८०॥

'कौनसी गणना' में वे गणित गण रूप हैं।
दीर्घ और ह्रस्व की रेखा शब्द चित्र—स्वरूप है।
॥८१॥

कंगन साजका कैसा सजाया रंग चित्र है।
रात 'सोहाग चूड़ी' का मेरे अमर मित्र का।
॥८२॥

कंगन किंकिणी स्निग्ध ध्वनिके ही प्रियांक में।
प्रिय श्यामल बंसी की ध्वनि लेती विराम है।
॥८३॥

卐 भवमाला 卐

पाणिग्रहण वेलामें पाणि ज्यों प्रीति से बढ़े
त्यों 'परिणय' रेखाएं प्रेम संकोच में बढ़ीं।
॥८४॥

छिपा है वृत्ति रेखामें क्रमशः शब्द चित्र सो,
'आत्म'की कांत वेलामें मेरा श्रीकांत मित्र जो।
॥८५॥

'लेखन स्थान' को जैसो प्रिय लेखन गान है।
'अविराम विरामों' में सोपान क्रम दान है।
॥८६॥

शीर्षक 'दाव लेने' में भ्रूभङ्ग प्रिय दाव है।
पंक्तिकी गतिरेखामें भङ्गिमा हिय हाव है।
॥८७॥

'वर्षा महोत्सवों में' है वर्षाकी धार जो बनी।
'जाह्नवी घाट में' भी है घाटकी सीढ़ियाँ बनीं।
॥८८॥

'दशरंगी दशा' पीछे दिशाएं दश रंग सी।
रंगीला राज है आगे आशाएं एक रंग सी।
॥८९॥

'संकेत स्थान' है टेढ़ा विरंगा प्रेम रंग है!!
टेढ़ेकी पास जाता है सीधा स्वभाव संग है!
॥९०॥

दो छोह एक सा होवे 'सेवा विवराता' कहे।
'मानिनी अंगिठी' कैसो 'सेवा विवशता' कहे।
॥९१॥

कीर्ति भी कीर्तिको पावे धन्याा 'कीर्तिमयी' कहे।
वर 'वराटिका' खेले रस आकार हो बहे।
॥९२॥

रचा है चारपायों में 'श्री' सिंहासन ही सना।
'साम्राज्ञी' देवता मानो अंतरासन में घना।
॥९३॥

'महादेवी' कला चांद्री मन व्योम सुहा रही।
'शिक्षा' झंझीर के जैसी सोने के हार सी रही।
॥९४॥

'वधस्तम्भ' दिखे कैसा वधाई के प्रकाशमें।
'भवमाला' बनी माला 'किरन' अवकाश में।
॥९५॥

रमण 'स्मरणाकार' घुमावे में वहो वहो!
'ढालवाँ' में ढले पंक्ति सौंदर्य सारमें रहा।
॥९६॥

अभिन्न भिन्न आकार प्रियके 'मुखवास' के।
'नीराजना' अहा न्यारी राजती सुख वासमें।
॥९७॥

卐 सायुज्यमाला 卐

अक्षय 'अंजलि' श्री में अंजलि पात्र रूप है !
राजेन्द्र 'तिलक' श्री है आत्मतिलक रूप है !!
॥९८॥

छाई प्रिया 'सखी' में है अहा अश्लेषकी छटा ।
'द्विरागमन' में छाई सुन्दर रस की घटा ।
॥९९॥

श्री 'रत्नकुक्षि' सी कुक्षि 'निद्रा' मैया—रसांक है !
मैत्री की गति खींची या 'महाकाल' मयांक है !
॥१००॥

'जीव औ शिव' से खींचा सुन्दर रूप शं—कर ।
गंगा गहन—नीरों में छिपा कंकर शंकर ।
॥१०१॥

'सत्कार' प्रणिपातों सा; उड़ती चुनरी दिखे ।
'यज्ञ' वेदी सुहाती है सोपान क्रम सी दिखे ।
॥१०२॥

'धूप' की धूम छाई है अंतः सुन्दर आकृति ।
'समाधि स्थान' शिल्पीको बनाता एक आकृति ।
॥१०३॥

आकार पलने का है काव्य 'प्राकट्य भूमि' में ।
'धूलि प्रताप' में पूरी रेखामें धूलि भूमिति !
॥१०४॥

'मोक्ष' का रूप है सूक्ष्म। मोक्ष बांधा अहा यहाँ।
छोटी बड़ी लाकीरों में चार संख्या दिखा रही।
॥१०५॥

'प्रतिमा' है प्रति श्री में प्रति अप्रतिमा अहा।
'संगीत' रस वीणा के 'स्याही' के पात्रमें बहा।
॥१०६॥

श्री 'सायुज्य' दिखाता है †रजतपत्र मान को!
'महायात्रा' दिखाती है मुग्ध एक प्रयाण को!
॥१०७॥

'योगमाया' सुहाती है 'रसकाया' स्वरूपमें!
आओ रास–महामाया! शरदकाय रूपमें!!
॥१०८॥

११ मार्च १९५९ रात्रि-११
(लेखिका का जन्म दिनांक) बुध फा. शु. २,२०१५ वि. स.
बोरीवली (पश्चिम)
[बम्बई]

---

† દેહાંતે યથાસ્થિત વ્યવસ્થા માટેનું અલૌકિક વસિયત નામું.

मालागति

१ क्यों शब्द 'विश्राम' ?

२ पत्ती

३ दिनांक गुणांक

४ प्रथम माला की प्रस्तावना

५ प्रस्तावना !?

माला-गति

❋ क्यों शब्द 'विश्राम' ? ❋

प्रभु के प्रिय गानों की
"समाप्ति"
मानती नहीं।
शुभारंभ सदा देखूँ
उत्सव जानती यहीं। ॥१॥

कृति उपान्त्य भागों मै
'विश्राम'
शब्द आ रहा।
गोपियाँ श्रुति+ रुपाएं
-श्रुति विश्राम में रहीं। ॥२॥

*विश्राम घाट—वासी सो
×घट विश्राम कुल है।
°घट विश्राम लेता है
माला विश्राम मूलमें। ॥३॥

+વેદ ઋચાઓનાં અવતાર રૂપ ગોપીજનો
÷'श्री हरि विरह माला' ના શ્લોકો રૂપી રસઋચા
*જીવનનો વિશ્રામ ખોળો-પ્રભુ શ્રીયમુનાજીનો વિશ્રામ ઘાટ
×સ્થૂલ, સૂક્ષ્મ, કારણ દેહ °સ્થૂલ દેહ.

ममत्व योग विश्राम
समत्व योग में
छिपा !
अहंत्व योग विश्राम
ब्रह्मत्व योग में
छिपा !
॥४॥

जन्म है योग की छाया
माया या तो वियोग की ।
विरह रस काया में
छाया
विश्राम योग है । ॥५॥

※ पत्ती ※

तात श्री संत आत्मा को भला कौन न जानता।
क्या लिखे लेखनी स्निग्धा मन की मन मानती ॥६॥

प्रभु–दत्त पिताजी की
प्रवाही परिचायिका !
पुत्री की प्रणति श्री में
पत्ती है
कीर्ति कायिकी ! ! ॥७॥

बेटी आभार मानें क्यों ?
रे; शिष्टाचार भार है।
असार यह संसार विशिष्टाचार सार है ॥८॥

※ दिनांक गुणांक ※

श्री षड्ऋतुमें मेरी
मालाएं बहती रहीं !
तिथि औ तारिका वार भिन्न भिन्न वहा रहें। ॥९॥
श्री 'परिचायिका' में तो पहले का दिनांक है।
भ्रम पाठक को ना हो स्पष्टता है गुणांक में– ॥१०॥

प्रथम मालाकी प्रस्तावना

श्री 'परिचायिका' जन्मी पिताजी के सुहार्द से,
परितः 'मौलिकी माला'
देखते ही रसार्द्र सी ॥११॥
प्रादुर्भूत हुई मेरी मालिकाकी परम्परा !
खिलती खेलती जातीं मालाएं अपरम्परा ! ॥१२॥
छपें ये पृष्ठ माला के
श्री प्राक्कथन कार के
करों में भेजती पुत्री
दुवारा ही विचार में। ॥१३॥
श्री उपोद्घात कर्ता की
उत्तरदायिता रही !
उद्गार—लेख भागों में
निज-स्वतंत्रता रही ! ॥१४॥
क्या घटबढ़,
बाढ़ें सी सप्तमाला निहारते ?
या रूपांतर की इच्छा—
प्रस्तावना – विहार में ? ॥१५॥
लिखा श्री पितृ हस्तों ने प्रथम बार जो वही।
श्री परिचायिका बच्ची ! उसी ही रूपमें रहो। ॥१६॥
घटाने या बढ़ाने का ना रूपांतर भाव है।
छपें ये पत्र माला के देखें तन्मय भाव से ! ॥१७॥

❀ प्रस्तावना !? ❀

'पुरोवचनमाला' या 'चित्रमाला' भले बनीं,
माला—प्रस्तावना मेरी
अंतः प्रस्ताव में सनी ! ॥१८॥

कथा भूमि भूमिका सजूँ .....
बिखरें स्मित फूल दो !
वृत्ति, टिप्पण टीका भी छिपें अश्रु दुकूल में ! ॥१९॥

चलाउँ लेखनी चाहूँ माला—भाष्य न हो सके।
श्री नेति नेति में
मेरी लेखनी नींद ले रुकी। ॥२०॥

पाठक धर्मबंधो हे ! हे आत्मप्रिय पाठिका !
प्रास्ताविक अहा क्या हो
'विरह माल'—पाठक !? ॥२१॥

स्वयं संबंध सख्यों में
मेरा मौन विराम है !
जाने 'श्यामा' सुरामा जो !
जाने अंतर राम सो !! ॥२२॥

३०-३-१९५९ शुक्र-मध्याह्न
फा. शु. १०/२०१५ बोरीवली (पश्चिम)

[श्री हरि–विरहमाला–चित्र–परिचय]

१–'श्री' की भी तिरछी छवि !
२–इन नयन की भाषा...
३–स्फटिक शारदा माँ के
४–माला हो सरिता बही...
५–माला की सप्तभंगी पै
६–तुलसी माल पै तोरा
७–कुंडल कहते हुए
८–घुघरी बोलती दिखी
९–मुद्रिका भाव भद्रिका
१०–सोहागी वलयों की क्यों–
११–रत्न कगन हो वही !
१२–श्री सवा वालकी सली !
१३–विशाखा गोपिका ने ये
१४–श्री के केश कलाप में
१५–निहारे तिलकायिता !!
१६–विबुधातीत में छवि !
१७–आकृति, कृति–ज्ञान मे
१८–चित्र की जन्म सोहिनी
१९–शब्द श्री से सुहावनी
२०–छवि की छवि भी मेरी–
२१–शृंगार श्याम ही मेरा–
२२–श्री माला मैं स्वयं बनी !
२३–श्री

卐 卐 卐

卐 श्री अनुष्टुप् वृत्त में 卐

['श्री' की भी तिरछी छवि !]

तिरछा श्याम तू मेरा !

श्री
की भी*
तिरछी छवि !
तिरछे भाव में
तेरे
तिरछी–
नेत्र की छवि ! ॥१॥

[इन नयन की भाषा....]

चिंतन–मुग्धता–मूक–'श्री' समर्पण लीन है...
इन नयन की भाषा–
नयन चंद्र–मीन में। ॥२॥

[स्फटिक शारदा माँ के]

स्फटिक शारदा माँ के
दैवत काच वे बनें !
देव दर्शन के यंत्र
क्या उपनेत्र ये बनें !? ॥३॥

*વાંકી છબિ. લલિત ત્રિભંગી બાંકે બિહારી વાંકડો છે, શ્યામની વાંકી રીત છે; માટે 'નિર્મલ–છબિ' પણ વાંકી પડી છે.

[माला हो सरिता बही....]

माला को धरते हाथ उर्मि की नदियाँ बहीं !
अङ्ग प्रत्यङ्ग—रेखा से
माला हो सरिता बही ! ॥४॥
सुहाती सात मालाएँ एक में एक है लपी !
मोहती एक माला या प्रिय
तादात्म्य मे लपी ! ॥५॥

[माला की सप्त भंगी पै]

•पटली की सली लंबी त्रिशंकु सात हैं छिपी।
†पाटल पुष्प किंजल्क १किंशुक कल्पना छिपी ! ॥६॥
माला की ×सप्तभंगी पै
*सप्तभंगी बहा रही।
कल्पना — भंगिमा में यें
खेलती वस्त्र में रहीं। ॥७॥

• સાડીની પાટલીની સાત સળ
† પાટલ-લાલ ફૂલના રસથી રંગાયલી-
૧ કલ્પનાના રેશમ તારોથી વણાયલી સાડી
× એક હજાર આઠ પારાની સળંગ માળાને સાત વળાંકે વીંટી છે, એક અખંડ ' શ્રીહરિ વિરહમાલા ' ને સાત માળાના વળાંકે વીંટી છે
* કમલ કોમલ કલ્પનાઓને કારણે ત્રિભંગી છબીના ધ્યાનમાં પાટલીની સળ ભંગિમા બની ગઈ છે.
એ સળોની ઓટે કલ્પના રત્નો સંતાડ્યાં છે.

[तुलसी माल पै तोरा]

तुलसी माल पै ×तोरा, प्रसन्न झूमता रहा !
विरह फूल माला की अन्तः श्री
चूमता रहा ! ॥८॥
या रस फूल बेनी के सार में तुलसी बही !
हरि विरह माला के हार में हुलसी बही ! ॥९॥
शुक्ल भाव भरी बेनी शारदा स्मृति में धरी !
शारदा वत्सला
श्री श्री
श्री वत्स झुकती निरी ! ॥१०॥

[कुंडल कहते हुए]

झुके कपोल पै वे तो—
कुंडल कहते हुए—कृष्ण संदेश को—
मौन;
कान में—
रहते हुए ! ॥११॥
कुंडल सात रंगी हैं इन्द्र धनुष्य रंग से ।
मेघ धनुष्य की भेंट
मेघ श्यामल संग में । ॥१२॥

× અંબોડે ફૂલનો ફૂલ તોરો

[घुघरी बोलती दिखी]

बेढ़ की रन कारों में कविता–रनकार है।
या रस रन कारों में
झूमती झनकार है।
॥१३॥

चांदी की घुघरी प्यारी
प्यारे को चांद सी दिखी!
ब्रज के चांद की प्रीती
घुघरी बोलती दिखी!!
॥१४॥

[मुद्रिका भाव भद्रिका]

अश्रु मुक्ता छिपाती है
मुक्ता सुवर्ण मुद्रिका!
प्रतीक धरती बोली–
मुक्ता सौवर्ण भद्रिका!
॥१५॥

[सोहागी वलयों की क्यों–]

सोहागी वलयों की क्यों–
संख्या विषम ही बनी ?
प्रिय विषम रीतों को
लिखे विषमता तनी !
॥१६॥

[रत्न कंगन हो वही !]

काच कंगन धारे हैं
नहीं हिरण्य के सखे !
हिरण्य गर्भ हे !
तेरा; प्रतिबिंब यहाँ दिखे !
॥१७॥

काया है काच सी सत्य समझ बुझ के सखी–
लाई क्या कंगनें नित्य अमल भाव से सखी ??
॥१८॥

सुवर्ण वलयों से क्या
सुवर्ण मंडिता सदा !
चूड़ी तो अविनाशी की
सुहाग मण्डिता सदा !!
॥१९॥

बलय काच के ना हैं रत्न के मानती रही ।
निर्मल भाव रत्ना ही
रत्न कंगन हो वही ।
॥२०॥

[श्री सवा वाल की सली !]

सवाये स्नेह +गोपी के
श्री सवा वालकी सली !
तराजू में—
तुला कृष्ण—
×थी सवा बालकी सली !
॥२१॥

पराधीन सदा गोपी प्रभु भाव अधीन सो ।
श्री स्वाधीन विशाखा है—
श्री में तो भी पराधीन ।
॥२२॥

+ વિશાખા ગોપીની સવાવાલની સળીએ—
શ્રી સમર્પણમય સવાયા વા'લની સળીએ 'શ્રી'... [!?]

× પરમ ભગવદીયા ગંગાબાઈની સવાવાલની વાળીએ
ડાકોરમાં શ્રી રણછોડરાયજી તોળાયા'તાં...

[विशाखा गोपीका ने ये]

विशाखा गोपिका ने येः धराई वस्तुएँ विभो !
इसमें प्रेरणा तेरी; मेरा ना कुछ भी प्रभो !
॥२३॥

'पुरोवचन माला' में निर्देश 'स्वस्ति' में वहा—
उसी ही प्रिय गोपी की
पूजा सोहाग की यहाँ !
॥२४॥

हरे ! विरहिणी तेरी
श्रृंगार विरही बही ।
हरि विरहिणी को ही—
+हेरती—
फिरती रही— ॥२५॥

श्याम प्रसाद को लेती—श्रृंगार श्री कहीं कहीं !
सजाती 'निर्मल श्री' को
सजी जाती स्वयं वहीं !!
॥२६॥

+ શૃંગાર-આભૂષા 'શ્યામા' ને શોધે છે
'શ્યામા' શ્રૃંગાર-ભૂષણોને નથી શોધતી
શ્યામ પ્રેરણાથી મહા ભાવુકા ગોપીઓથી ધરાય છે-અર્પાય છે
તે જ નિર્મળ મૂર્તિ ધરે છે
'વસ્તુ નહીં', પણ વસ્તુમાંયે ભાવના જ સ્વીકારે છે.

[श्री के केश – कलाप में]

गंगाजल छिपाया है चूड़ा मे चन्द्र चूड़ ने–
छिपाऊँ क्यों नहीं मैं तो
अलक – पाश – होड़ में ।
॥२७॥

यमुना जल की धारा
'श्री' के
केश – कलाप में ।
रास श्रम बही धारा गोप केश मिलाप में ।
॥२८॥

भले मांग कहें लोग
यमुना मार्ग है जहाँ;
मेरे शिर
बिराजे जो
शिर ताज
सदा जहाँ ।
॥२९॥

नहीं है केश मेरे ये
यमुना जल वालुका !
कृष्ण के कर पादों को चुमते तृण तालसे !
॥३०॥

[निहारे तिलकायिता !!]

कुंकुम अष्टगंधीय केसरी वर्ण का सखे !
कुंकुम कण कोरे ही प्रीति के पर्ण में सखे ! ॥३१॥

उसमें कण पानी का मिलाती न कभी अणु;
विरह अश्रु में मेरे
शेष ना
जल का कण। ॥३२॥

अग्निहोत्र सरी सी सो राजे रेखा प्रदीप्त सी।
प्राण के अग्निहोत्रों में
विरह ज्योति दीप्ति सी। ॥३३॥

तिलक केसरी मेरा
रस तिलक
मुग्ध है।
तेरे ललाट में मैने किया तिलक मुग्ध है। ॥३४॥

हे नाथ ! भाल में तेरेः धरा तिलक शांत है।
सोहागी भाल में मेरा
नित्य तिलक कांत है ॥३५॥

तिलक केसरी तेरा
निहारे तिलकायिता !
तिलक केसरी मेरा निहारे +तिलकायित ! ॥३६॥

+कस्तूरी तिलक ललाट पटले [श्रीमद्भागवते]

[विबुधातीत में छवि !]

बिक्रम राज का साल
सहस्त्र द्वय पन्द्रह !
कृपा सात समुद्रों की औ अक्तुबर सात है। ॥३७॥
षष्ठी के लेख के जैसी
षष्ठी थी शुक्ल आश्विन ।
नवरात्रि–दिन श्री भी है अपराह्ल पूजन। ॥३८॥
बुध में छवि छाई है
क्या कहूँ बुध हे कवि !
सुधि बुधि बिसारी है
विबुधातीत में छवि । ॥३९॥

[आकृति; कृति–गान में]

बहे हैं चित्र के भाव आकृति; कृति–गान में।
आह्निक–अपराह्ल क्या
धी–विभाकर–मान में ॥४०॥
विक्रम वत्सरी यादी सहस्त्र द्वय सोलह।
सहस्त्र वर्ष बीते भी
°श्यामा की उम्र सोलह ॥४१॥

° "श्यामा षोडश वार्षिकी" काव्य साहित्यमें–रससृष्टि में श्यामा सदैव ही सोलह वर्षकी है।

हिन्दी में भी यहाँ संख्या उर्दू की लिपि से पढ़ें।
बयासी अष्ट साहस्री श्रीवाम गति से चढ़ें–
।।४२।।

पाठक भाग्य शाली हे !
शालि वाहन है शक।
अष्टदल धराती हूँ सुषमा में नही शक।
।।४३।।

भूतलकाल रेखा में *शकसे मुक्त है +शक।
श्याम की पाद सेवा में शक उन्मुक्त है शक।
।।४४।।

प्रतिपच्चैत्र शुक्ला में नवीन वर्ष भेंट में–
श्री शुक्ला शारदा श्यामा
मिलें
आनन्द भेंटतीं।
।।४५।।

है अठावीसवीं मार्च उन्नीस साठ में गुनी।
चित्ररेखा नदी †"रेवा"
‡"रेवती" – काल में बनी।
।।४६।।

---

* સંદેહ + કાળ ગણનાનુ વર્ષ
† રેવા નદીમાં આવેલ રેલની જેવુ–પુરે વહેલુ ચિત્રકાવ્ય.
‡ રેવતી નક્ષત્રમાં આ ચિત્રકાવ્યનુ સર્જન થયુ છે.

[चित्र की जन्म सोहिनी]

काया "मोहमयी" जन्म
तो भी मोहन–मोहिनी ।
जीवन–जन्म है चित्र !
चित्र की जन्म सोहिनी । ॥४७॥

[शब्द श्री से सुहावनी]

छवि खींची वन श्री में
शब्द श्री से सुहावनी ।
ग्राम "बोरीवली" रेखा
'श्री' *गुफा है लुभावनी । ॥४८॥

[छवि की छवि भी मेरी–]

देह है विधि का चित्र
हरि संकेत को लिए !
दिए श्री श्याम संकेत
निर्मल छवि ने लिए ! ॥४९॥
छवि की छवि भी मेरी कविता आज खींचती ।
पुजारिनी प्रभु श्री की
श्री व्रज राज – राजती ।
॥५०॥

* બોરીવલી ગુફા માટે પ્રખ્યાત છે નિર્મળ-આવાસ સ્થાનમાં શ્યામ સરસ્વતીના અખંડ કૃપા ધોધને લીધે અપાર સર્જિત અપ્રકાશિત મુદ્રણ પોથી નિધિ ફાઈલ કેબીનેટોની બેવડી હારોને લીધે કુટીર ગુફા બની છે

[श्रृंगार श्याम ही मेरा—]

तो भी आज कहूँ सत्य नहीं है चित्ररेख भी।
प्रति पुलक के भाव
प्रीति पुलिन शाख से।

॥५१॥

वस्तु वर्णन में मैंने मनाया मन को सखी!
वस्तु की मूल रूप श्री छिपाई मन में सखी!

॥५२॥

श्रृंगारों में न श्रृंगार
श्रृंगार—
स्वात्म तत्त्व में!
श्रृंगार इन रोमों में
अर्पण
सोम सत्त्व में!

॥५३॥

श्रृंगार श्याम ही मेरा श्रृंगार श्याम रूप में!
श्रृंगार विषयातीत
"रसो वै सः" स्वरूप में!

॥५४॥

[श्री माला मैं स्वयं बनी !]

उच्छ्वासों की बनी माला
　　श्री माला मैं स्वयं बनी !
तो कहूँ मालिनी कैसे
　　श्री मालापति में पनी !　　॥५५॥

[श्री]

श्री—कहूँ योगमाया या !
　　श्री श्यामा ! इन्दिरा कहूँ !
श्री—सौंदर्य स्वरूपात्मा ! श्री—श्रीजी ! 'नाम' या कहूँ ॥५६॥
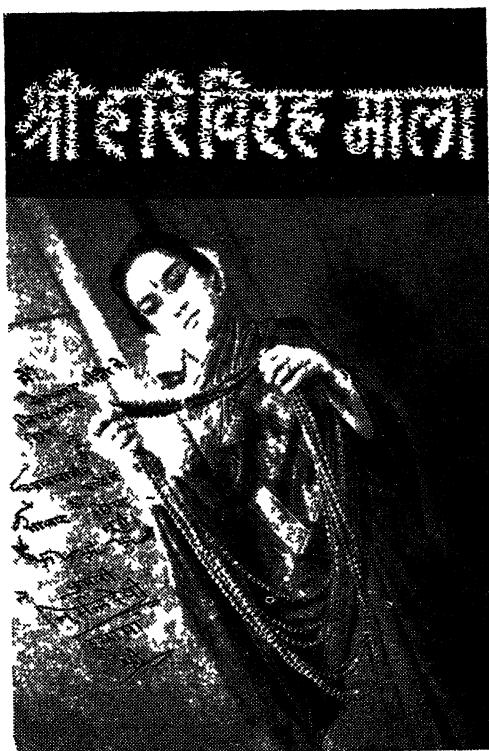
दिनांक –७/१०	आश्विन शुक्ला नवरात्रि षष्ठी	अपराह्ण बुध
ई. स १९५९	वि सं. २०१५	बम्बई

श्री श्री

श्या ह मा

श्री रि

श्री ह रि वि र ह मा ला

र श्री

श्या ह म

मा

श्री ला

'श्याम-श्याम' त्रिलोकी को ।

'नि र्म ल' — आत्मवत् सदा ।

रस स्वस्तिक में स्वस्ति ग्रंथ आरभ मे मुदा ॥

卐 卐 卐

विजयादशमी २०१६ वि. स., शुक्र श्रीकुटीर, बोरीवली

मौक्तिक माला [१]

१ क्यों ?!

२ उपहार अरु भिक्षा

३ मिलन वचनकी याद

४ त्रिशंकु दशा

५ तन-मन-चेतना

६ द्रव्यपूजा-भावपूजा

७ आह्वान

८ प्रपत्ति

९ अन्वेषण

१० उपालभ

११ विप्रयोग

१२ वियोग वेदी

१३ रसनिर्वाण

१४ मु

का

माला....

मौक्तिक माला

[अनुष्टुप]

卐 क्यों ?! 卐

जन्मी ही जगत् में क्यों मै ?! संसार योग्य हूँ नहीं।
आई तो भी, अरे क्यों री,
यहाँ अस्तित्व में रही !? ॥१॥
यदि जीती रही तो भी,
क्यों तू शैशव खेल में,
क्रीड़नक बना मेरा, प्रेमबंधन जेल में !? ॥२॥
खेलने के लिये मैं क्यों, शास्त्रार्थव्यूह में बही !?
विद्या की वाटिका में क्यों,
वृत्ति की बीन को गही !? ॥३॥
यदि ऐसा हुआ तो भी,
क्यों री बेसुध सी बही ?!
व्याख्या सी सख्य सौख्योंकी, क्यों स्वयं साध सी रही ?! ॥४॥
चित्ररूपा बनी मैं तो,
विचित्र—चित्र बाट में !
चित्रकार ! कहो कैसी,
रेखा लेखा ललाट मे ?! ॥५॥

卐 उपहार अरु भिक्षा 卐

कौमार्य मनुजन्मों के,
अर्पती हूँ तुझे विभो !
सौभाग्य–देव मेरे हे ! प्रार्थती प्रेम से प्रभो ! ॥६॥

हृदय के एक कोने से, प्यार मैं करती रही !
प्यार की हार को भी मैं,
हार सी धरती रही ! ॥७॥

'संचित' पाद में तेरे,
'क्रियमाण' रुके रहो !
'प्रारब्ध'; याद में तेरी, भोगती ज़िंदगी बहो ! ॥८॥

तुम्हारी सर धारा में, स्नान को करती रहूं !
तुम्हारी रस कारा में,
ध्यान को धरती रहूँ ! ॥९॥

द्वारों में देव ! आई हूँ,
भाव भिक्षान्न के लिये !
देहली में खड़ी 'देवी',
माधुर्य पान के लिये ! ॥१०॥

卐 मिलन वचन की याद 卐

भीतर दर्द रक्खा था, †पाहन से *बिछोह में।
मिलोगे कल ही स्वामी,
+पाहुने! हिय ×छोह में ॥११॥

कल तो काल–गर्भों में,
जा बसी फिर ना मिली!!
तेरे विश्वास बाक्यों मे,
श्याम! मैं सर्वदा घुली! ॥१२॥

नंदभवन में प्यारे, न्यारे यमुन तीर पै।
या तो वीथि विहारोमें,
कि गोपी–मन–हीर पै ॥१३॥

यामा सी वट छाया में,
विश्रांति सह लैटते!?
या राधारस–काया में,
अश्रांत तुम खेलते!? ॥१४॥

---

†પથ્થર *વિયોગ +મહેમાન ×છેડા.

अब्द के शब्द को भूली!? तुम्हें विस्मृति या हुई!?
मैं तो हूँ बावरी, भोली,
तेरी संस्मृति में गई! ॥१५॥

गति क्या सूर्य की झूठी!?
या तो पंचांग की तिथि!?
तुम्हीं ही या मृषा बोले!?
कैसे सौहार्द की स्थिति!? ॥१६॥

卐 त्रिशंकु दशा 卐

श्यामसुंदर! मै तुम्हें,
पा नहीं सकती, अरे!
भूल भी सकती हूँ ना,
कौन उपाय हे हरे!? ॥१७॥

श्याम सरोज–पत्तों में,
मन–मधुप भूल से,
बंदीवान हुआ क्यों री!
झेलता दुःख–शूल से ॥१८॥

नहीं हूँ योग्य मैं तेरी,
तो भी हाँ चाहती कही।
रसेश–भोग्य हो वृत्ति,
अलौकिक मना कहीं ॥१९॥

तुम्हारी हास्यरेखा से,
मात्र विवशता बही।
मिलन लास्य लेखा से,
मित्र! व्याकुलता सही ॥२०॥

मेरा प्रिय रहा तू तो,
मधुराधिपते सही।
पर मेरे लिये ही क्यों,
बहाता कटुता यहीं?! ॥२१॥

अधूरी माधुरी तेरी,
उक्तियाँ मन में रमीं।
मधुरी अधूरी तेरी,
रीतियाँ मन में शमीं ॥२२॥

अधूरे दर्शनों की भी,
आशा दुर्लभ ही बनी।
रही सही घड़ी बीती,
अधूरी ज़िंदगी सनी! ॥२३॥
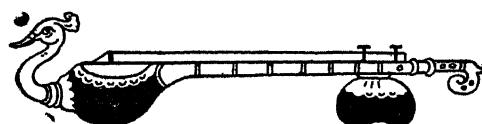
卐 तन-मन-चेतना 卐

श्रेय अश्रेय जानूँ क्या,
श्रेय प्रेय धरें तुझे।
मेरे लिये करो जो सो,
शिरोधार्य सदा मुझे ॥२४॥

प्रवचन कथाओं में,
'आधिभौतिक' छांह है।
रसेश–रसगाथा में
'आधिदैविक' देह है ॥२५॥

घिरी अनंत चिंता में,
जन्तु सुलभ छाय है।
अनंत–तत्त्व–चिंता में,
'आध्यात्मिक' सुकाय है ॥२६॥

कर में कार्यवल्ली है,
शिर पै भव-भार है।
हिय सौहार्द हाला है,
जिय में हरि-हार है! ॥२७॥

अंतर भाव शाखा की,
कोकिला नीड़ में नहीं।
नहीं कोई 'विशाखा' है,
अशाखा पीड़ की यहीं ॥२८॥

प्रातः सायाह्न वेला में,
अरु मध्याह्न योग में,
संध्या त्रैकालिकी होती,
तेरे योग वियोग में ॥२९॥

अंतः अर्णव का पानी,
आता नयन—घाट पै।
तेरी सुंदर काया को,
छूता जीवन—पार पै ॥३०॥

अभिन्न भाव हैं पूरे
पूरित भव-कूप में।
प्रच्छन्न भावना रोती,
छिन्न विच्छिन्न रूप में ॥३१॥

रश्मियाँ नयनों की ये
नयनचन्द्र   चूमती।
झांखी की झंखना मेरी,
झांकी में मन झूमती ॥३२॥

अमृत सिंधु हाला से,
निर्मिति तन की हुई!
तुषारबिंदु—मालासे
संभूति मन की हुई! ॥३३॥

अग्नि की ज्योत-रेखासे,
कल्पना-देश की धरा!
श्री वृत्ति विद्युत्-लेखासे,
सद्वाणी वेश की धरा!! ॥३४॥

अंगुलि लेखनी वेली,
ध्यान के तंत्र में पली!
चित्त श्री श्याम की चेली,
प्राण के मंत्र में मिली! ॥३५॥

卐 द्रव्यपूजा–भावपूजा 卐

कुसुम–कलिकाये ये,
निर्मल कलि ने चुनीं।
अर्पण उत्तरों में है,
अंतः सलिल में सनीं ॥३६॥

स्नेह सुमन संजोये*
प्रेमांचल पसार के,
×सराबोर कलेजे से,
माँगती प्यार आत्मके!! ॥३७॥

प्रिय पूजा प्रतीक्षा में,
पुष्प ये मुरझा रहें।
संग रंग समीहा मे,
अंगराग गहे बहे ॥३८॥

माला महकती मेरी,
मनमोहन ओ पिया!
सौहार्द - सूत्र में रोती,
कंठआश्लेष के लिये! ॥३९॥

---

*चूंटी ने એકત્ર કરેલા ×તરબોળ

व्यथा के धूप रक्खे हैं
दिव्य दैवत पात्र में!
अंतर अर्घ्य मेरे हैं,
नयनांजलि पात्र में! ॥४०॥

उष्णता रक्त नाड़ी में,
चांदनी को बहा रही!
व्याकुल वृत्त में वृत्ति,
वंदना करती रही ॥४१॥

वृत्ति की वर्तिका श्री में
वेदना का दिया जला;
चिंतन तैलधारा के
चेतन ज्योत में घुला ॥४२॥

विविध वृंद वाद्यों में
वेदना की स्वरावली,
हरि विरह में कैसी
करुण रस में पली! ॥४३॥

वंदना करते भूली,
देखती मुखड़ा रही,
अर्चना करते भूली,
सोचती ही खड़ी रही!! ॥४४॥

स्वप्न [1]गीले [2]सजीले थे,
रसीली बोल ना सकी!
हे हठीले! सुनो भोले,
[3]लजीली खोल ना सकी! ॥४५॥

प्रेम देव! सदा तेरे,
पुण्य पादाब्ज पूजती।
प्रतिक्षण प्रतीक्षाएँ,
प्राणेश्वर निराजती ॥४६॥

[4]उफनाती सुखोर्मियाँ
नहलाती तुझे प्रभो!
उभराती रसप्राणा,
बहलाती मुझे विभो! ॥४७॥

---

[1]આર્દ્ર ભીનાશવાળા [2]અત્યંત સુશોભિત [3]શરમના શેરડાઓથી શોભતી [4]વેદનાની ધ્વનિથી ભરેલી

ऋतु समय की सज्जा,
सजाई स्नेह राजती।
'वासक सज्जिका' बाला,
वीरानों मे विराजती ॥४८॥

तेरे लिये छिपाया है,
आत्मा की रस छाय मे-
अमृत घट को मैंने,
सिक्त हो प्रिय–काय में ॥४९॥

भार पौ+ फूटते तेरी,
स्मृति ऊषा लुभावनी।
क्षितिज रंग रागों में,
श्याम संध्या सुहावनी ॥५०॥

रूप ये आत्म में प्यारे!
कैसे आहा बिछा दिये!
रसरानी रसेशा के
बिंब सुंदर छा गए! ॥५१॥

+ અરુણોદય – મળસકાથી પહેલાનો સમય

卐 आह्वान 卐

आओ! आओ! प्रभो! आओ!
पुकारें बेबस यहीं।
उठते, बैठते, सोते,
नित्य बेचैन मैं रही ॥५२॥

प्रेमप्रसून की माला,
श्रीपते! कंठ धारिए।
प्रार्थना नम्र मेरी है,
ओ प्राणेश! पधारिए ॥५३॥

विश्वात्मा वनमाली हे!
तेरी विश्वास छांह में;
व्यामोही वेदना भूले,
बाला के मन देह हैं ॥५४॥

भूलती भव-भारों को
श्री भगवंत पाद में।
गूंथती हार्द हारों को,
श्रीहरिरस-याद में ॥५५॥

संदर्श, स्पर्श-आशा में,
श्वासोच्छ्वास सदा चलें।
प्राण के पाश मेरे ये,
प्रेम के कूप में पलें ॥५६॥

व्रज - बांकेबिहारी रे !
सीधे ही बस आ चलो ।
हरे! राह मही हारी,
अंतर देव ! आ मिलो ॥५७॥

रस सान्निध्य तेरा जो,
नहीं है भाग्य में यदि,
तो घड़ीभर आओ जी,
दया के योग्य मैं यदि ॥५८॥

आत्मा की प्यासकी तृप्ति,
तुम्हारे दर्श में रही,
अथवा प्यासकी वृद्धि,
भाववर्षण में बही ! ॥५९॥

थकी; कांत! विलापों से,
संलाप—सुख को लहूँ ।
आलाप बीन का छेड़ूँ ।
मैं तेरे रस में बहूँ ! ॥६०॥

बंसी को सुनती तेरी,
भावना मन चौक में ।
श्याम सुंदर! आओ जी,
'श्यामा' के रस लोक में ॥६१॥

卐 प्रपत्ति 卐

जीवन – सूर्यरेखाएं,
हैं अस्ताचल सानु में।

अंतः अक्षांश लेखाएं
हो भगवंत भानु में ॥६२॥

नहीं शरीर मेरा है,
देह–स्वजन तो कहाँ।

मात्र परिजनों में हैं,
'श्याम' और 'सरस्वती' ॥६३॥

शांति से सोचती हूँ तो,
कोई भी योग्यता नहीं।

तोभी मैं मनुजन्मों में,
तुझे क्यों चाहती रही !? ॥६४॥

योग्यता को बिना देखे,
दया को यदि ला सको;

तो चले शांति की सांसें,
ओ देव! यदि आ सको ॥६५॥

कोई नहीं दिखे रास्ता,
सुस्ती में रहती तभी।

ज़िंदगी सरिता सी है,
सस्ती सांसें न हैं कभी ॥६६॥

न जाने नयनों से क्यों
सर्वदा सरिता झरे!

रस सुमन ने योंही,
सुमन सर्वथा धरें! ॥६७॥

卐 अन्वेषण 卐

निगमागम – पन्नों में,
तत्त्व को खोजती रही!!
विश्व विराट पोथी के,
पत्रों को पढ़ती रही ॥६८॥

परन्तु बुद्धु सी तो भी
बावरी बालिका रही!
प्रबुद्ध कब होऊँगी?
होगी मोहन की कही! ॥६९॥

परितः परिवारों में,
भववर्तुल सा बना,
तो भी अनाथ कन्यासी,
हूँ हरियोग के बिना ॥७०॥

कहां जाऊँ!? करूँ क्या मैं?!
कहीं न कुछ तत्त्व है!
कोई नहीं किसी का है,
तू ही अंतर सत्त्व है ॥७१॥

आंखें ये खोलनी अच्छी
विश्व में लगती नहीं !
तो भी नयन को खोले,
कार्य मैं करती रही ॥७२॥

शांति है मात्र आत्मा की,
तेरी भावसमाधि में !
आंधी अंतर में छाई
तेरी मिलन आधि में ॥७३॥

अनंत शून्यता में मैं,
श्याम को खोजती रही !
चित्र सी स्तब्धता मे मैं,
तूलि तल्लीन हो बही ॥७४॥

नीरव भावनाओं में,
नीरज पूजती रही !
सरव जीवनी में मैं,
प्रारब्ध रज में रही ! ॥७५॥

आई ऊषा ! बिछी संध्या !
छाई निशीथ नीलिमा !
कहाँ नीलम मेरा है !
दीखे सर्वत्र कालिमा !! ॥७६॥

[उपालंभ]

मेरा भाग्य नहीं सीधा !
सीधा तू भी नहीं मिला !!
अंतः वीथि रही टेढ़ी !
कृष्ण टेढ़ा रहा चला !! ।।७७।।

बाला को अबला को क्या,
समझा खिलवाड़ री !
शक्ति है सबला मेरी,
जीवन मृत्यु होड़ की ! ।।७८।।

वंचना छलना है क्या ?!
कि कुतूहल हास्य हैं !!
किसी को क्या जलाने में,
रे उपहास लास्य है ?! ।।७९।।

जीवन को न पाती हूँ,
जीवनेश भले जपूँ ।
मृत्यु भी नव आती है,
भले संताप में तपूँ ।।८०।।

बाला - सौहार्द - हत्या में,
परम पाप है अरे।
परम – तत्त्व – पुण्य – श्री!
ऐसे क्या आप है हरे!? ॥८१॥

फैसले पुण्य–पापों के,
तुम्हारे हस्त में रहें।
तुम्हारे पुण्य–पापों को,
कौन संसार में कहे!? ॥८२॥

दोष व्यापक को कैसा,
क्यों न कोई घुले जले।
स्नान सूतक तुम्हें क्या!?
कोई जिये मरे भले!! ॥८३॥

मेरी कसकती छाती,
हिलाती क्यों नहीं तुझे?!
मेरी ये पलकें रोती,
रुलाती क्या नहीं तुझे!? ॥८४॥

हिय हिचकियाँ मेरी,
कंपाती क्यों तुझे नहीं!?
अश्रु की झड़ियाँ मेरी,
घोलती क्या तुझे नहीं ?! ॥८५॥

मेरी ये चित्त चित्कारें,
भित्ति को भी भिगो रहीं।
मेरी घुमड़ती आहें,
प्रस्तर पिघला रहीं ॥८६॥

रुलाई राधिका रे, रे,
घुमाई व्रज गोपियां।
दुखाई दिल से 'देवी,'
भुलाई जग रीतियाँ ॥८७॥

卐 विप्रयोग 卐

वियोग वह्नि में वृत्ति,
शुद्ध ताम्र बनी प्रभो!
ताम्र की तार संयुक्ति
संदेश भेजती विभो! ॥८८॥

मात्र है जन्म मेरा क्या—
वियोग योग के लिये!!
प्राण तंतु टिका तो भी,
श्याम संयोग के लिये! ॥८९॥

देखती प्रिय पद्मों को,
शांत उच्छ्वास आड़ में।
प्रश्वास देखता तुम्हें
अंतः अंचल ओट से ॥९०॥

कभी मैं द्वार में ताकूँ,
झरोखे के प्रदेश से,
कभी अंतःकपाटों से,
वातायन–प्रकाश से! ॥९१॥

प्रत्याशा अरु आशा के,
टुकड़े टुकड़े हुए।
अब तो ओर काया ही
तेरे श्रीअंग को छुए॥९२॥

'धी' 'ह्री' हारी हताशा से,
आँखें ये आँसु से घिरी।
ज़िंदगी दर्द से भारी,
चेतना भाव से भरी॥९३॥

नेत्र की दीपिकाओं में,
प्रेम-ज्योति बली, जली।
नयन-पत्र पात्रों की,
मध्य-रेखा मिली, पली॥९४॥

कष्ट के अंत को लाना,
ज्वाल से नव चाहती।
शलाका धूप की जैसी
जलती शांत राह सी॥९५॥

卐 वियोग वेदी 卐

मेरी
वियोग वेदी में,
पादार्पण करो नहीं।
युगल मृदु पद्मों को,
छुए न उष्णता कहीं! ॥ ९६ ॥

मेरी
ये तान्त छायाएं,
सांत हो कि अनंत हो;
परंतु क्लान्त काया से,
कांत–कांति न तांत हो ॥ ९७ ॥

करकमल फूलों की;
कोमल चित्त चाह में;।
अतः अमल पत्तों की,
बीती ये क्षण आह में ॥९८॥

अकेली जलने* दो जी,
केली है आग की यहाँ।
हेली नहीं सुहासों की,
वेली वेष्टन तो कहाँ!? ॥ ९९ ॥

---

* तेजतत्त्व

तुम तो क्षीरशायी* हो,
क्षीरसागर में रहो।
मेरे अंतःसमुद्रों के,
तूफ़ानों में नहीं बहो ॥१००॥

मनःपवन× आँधी में,
आना. अच्युत तू नहीं।
मथुरा, द्वारिका में या,
जहाँ जी हो रहो वहीं ॥१०१॥

श्रीगरुड़विहारी! क्यों,
अवतरण कष्ट लें!?
अवकाश कहाँ भू में?!
आप आकाश+ में चलें ॥१०२॥

शीत तेरा कलेजा है,
शांति से श्याम हे जिमो।
भूल से भी नहीं भेटो
भांडीर वन। में घुमो ॥१०३॥

---

* જળતત્ત્વ × વાયુતત્ત્વ + આકાશ તત્ત્વ ÷ પૃથ્વીતત્ત્વ.
પરમપુરુષ–પાદારવિંદે પંચતત્ત્વોથી પંચાંગીય પુષ્પાંજલિ.

卐 रस निर्वाण 卐

ज़िंदगी की थकानें सो,
उतरें मृत्युघाट पै,
उसे मृत्यु कहू कैसे ?
जो संजीवन घाट है ॥१०४॥

जीने से ज़िंदगानी ही जलती रसयाद में !
शीतला ज़िंदगानी तो पलती मृत्युगोद में !! ॥१०५॥

अलौकिक सुकाया से;
अलौकिक स्वभाव से,
करूँ लोकोत्तरी पूजा
श्री अलौकिक देव हे ! ॥१०६॥

卐 मुक्ता माला 卐

हरि–विरह की माला
स्वीकारो
हृदयेश्वरी !
प्रिय !
अष्टोत्तरी
माला,
रही
अतर–
ईश्वरी ! ॥१०७॥

श्री मृत्युलोक की–
बाला,
मुक्ता–अमर मालिका।
अर्पती–
'निर्मल श्यामा'
तन्मय प्रीतिपालिका॥१०८॥

माला विश्राम-
श्री श्रीकृष्ण-जन्मवेला
श्रीकृष्णाष्टमी
बुध-रात्रि-१२
वि. सं. २०१२
निवासस्थान ता. २९-८-१९५६ मोहमयी

नीलम माला [२]

❋

नीलम माला

अनुष्टुप्

❋ तिमिरधना ❋

श्री विभाकर की धारा
या सुधाकर की विभा,
रसआकर! तेरे में
मात्र मैं देखती प्रभा ॥१॥

दिन मेरे लिये श्याम!
अमा की कृष्ण रात है।
रात मेरे लिये कांत!
प्रेमोज्ज्वल प्रभात है! ॥२॥

प्रगाढ़ रात्रि में रश्मि
निहारूँ घन कृष्ण हे!
कैसी संवेदना मेरी
वंदना-धन! वृष्णि हे! ॥३॥

महा तिमिर सिंधु में
स्नान मंगल नित्य है।
श्री श्यामामृत बिंदु का
पान आनंद सत्य है! ॥४॥

इसलिये क्या अहा मेरे;
श्री मीमांसक बंधुने,
'दशम द्रव्य'को माना
प्रिय तिमिर सिंधुको!! ॥५॥

दशम द्रव्य में मेरे
श्री एकादश रत्न हैं!
कई द्वादश वर्षों के
महामौन प्रयत्न है ॥६॥

❀ रस वैभव* ❀

'आलंबन' विभावों में ,
'उद्दीपन' प्रभाव तू !!
उद्दीपन-प्रभावों में
आलंबन स्वभाव तू ! ॥७॥

'संचारी भाव' में भी है;
संचरण सुहावना—
कृष्ण ! कांत ! दिखे तेरा
विहरण लुभावना ! ॥८॥

संचारी भावयूथों में
'स्थायी' सद्भाव की कथा ।
स्थायिनी क्या व्यथा मेरी,
संचारिणी यथा तथा !? ॥९॥

है 'स्थायी भाव' भी तेरे
शाश्वत् सौम्य स्वरूप में !
अस्थिर भाव भी हैं वे,
स्थायी के स्थिर रूप से ॥१०॥

* કાવ્યશાસ્ત્ર અને અંતર-રસશાસ્ત્રનાં સંયોજન

सीमा, समय-भावों 'की
नहीं है 'भावना' सखे!
सर्वाङ्ग-व्यापिनी मेरी,
एकांगी भावना सखे! ॥११॥

समय-देश कालों में
उद्दीप्ति भाव की रही,
प्रदीप्ति समयातीता
भावना की सदा वही ॥१२॥

'रोमांच, स्वरभंगादि-
सात्त्विक' अनुभाव से!
अद्वैत सुख सत्ता में,
सानुभाव स्वभाव से- ॥१३॥

संभाक्ति हरे! तू ही,
मेरे स्नेहिल कांत हे!
अद्वैत द्वैत रूपों में
आत्मप्रेम प्रशांत है ॥१४॥

❀ अभेद सम्बन्ध ❀

मेरे अंतर की धारा
अंगड़ाती बहा रही। स्मृति को सहलाती सो
इठलाती नहा रही ॥ १५ ॥

संगम के लिये कैसी
राधा–धारा–उमंग में। मिली विरहधारा में
ध्यान आधार अंग में ॥ १६ ॥

'आधार' और 'आधेय'
भिन्न हैं न्यायशास्त्र में। प्रियानुभूति में हैं वे
अभिन्न रसशास्त्र से ॥ १७ ॥

तू ही आधार मेरा है
और आधेय भी सखे! भावना भव्य भावों का
भागधेय सदा सखे! ॥ १८ ॥

मेरे मानस पात्रों में
रसद! रसमेय तू। हृदय–वी[illegible]तंत्री में
मधुर! मधुगेय तू ॥ १९ ॥

❋ दृष्टि–सृष्टि ❋

सृष्टि में दृष्टि को धारी
'दृष्टि सृष्टि'[1] स्वभाव में। दृष्टि में सृष्टि को हारी
रस–सृष्टि–स्वभाव में ॥२०॥

'प्रज्ञा परामिता'[2] ज्ञान–
प्राप्ति की नहीं शक्ति है। सुजाता मूर्ति की जैसी
सौम्य! अर्पण भक्ति है ॥२१॥

थकान अंग में आई
'प्रतिबिंब'[3] प्रवाद में। उतारूँ मै थकानों को
रसबिंब–विवाद में ॥२२॥

'असंप्रज्ञात' या कोई
'संप्रज्ञात' समाधि में। अति अज्ञात हूँ आत्मन्!
तो भी संज्ञात साध सी ॥२३॥

---

[1] વેદાંતનો અજાતવાદ
[2] બુદ્ધનું બોધિસત્ત્વ
[3] કેવલાદ્વૈત વેદાંતમાંની એક પ્રક્રિયા

※ जीवत्व ※

'सदंश' सान में भी है, प्रतीति अन्यथा रही।
'आनंद' गान की धारा, जो तिरोहित—
हो रही ॥२४॥

चिद्रूप गुप्त सत्त्वों को, चाहती रस
गुप्ति सी।
खोजती सुप्त तत्त्वों में ज्ञप्ति की प्रिय तृप्ति सी ॥२५॥

गान अर्जन में, मेरे,—संचितों का विसर्जन।
अरू विसर्जनों में है चित्त अर्जन—
सर्जन ॥२६॥

तेरी सद्भक्ति में; मेरे,—विषम योग
दूर हो।
दूर हो, श्याम राजा का, सुविषम वियोग सो ॥२७॥

विघातक विरोधी वे, कर्म कारण दूर हो।
मेरे ध्यान निरोधों में, धर्म धोरण पूर हो ॥२८॥

✶

※ ऋतुओं का साज ※

'वर्षा' वसुमती–रानी
रत्न सुंदर नूर से,
मुक्ता को मालिका ठानी
रस सलिल पूर से– ॥२९॥

मधुरी बोलती बानी
सलील जल स्वर से।
विरहानल में पानी
छिटका; पर शूर सा– ॥३०॥

क्रूर सा बढ़ते देखा
भस्म भूति सदा किये!
नहीं है शांति की रेखा
व्यर्थ सो यत्न जो किये ॥३१॥

नभ मंडल की रानी,
सखी 'शरद' आ रही!
मन नायक की मेरी,
'मानिनी नायिका' रही!॥३२॥

आँचल उँजियारे में
मनमानी गुनी रही।
अँधियारी कुटी में मैं
तानी आलाप में बही ॥३३॥

ऋतु 'हेमंत' सो आई
हृदय हेम को लिये।
प्रेम के मंत्र में पाई,
नेम के तंत्र को लिये॥३४॥

देवी कात्यायिनी कैसी,
प्रसन्न मनसे भई!
कोमल भावना कैसी
प्यार बरसती गई!! ॥३५॥

गोपिका ने करी मीठी
प्रार्थना प्रियता मना।
*"नंद गोप सुतं देवि!
पतिं मे कुरु ते नमः" ॥३६॥

'शिशिर' स्मृति में मेरा
मनोदल खिला रहा।
किंतु किंजल्क में हेरा
रस व्याकुल हो रहा!! ॥३७॥

* શ્રીમદ્ભાગવત–રાસ પંચાધ્યાયી, ૧૦–૧૯ (૨૨) ૪

बाला 'वसंतिका' आई
बासंती कल्पना खिली।
मेरे मानस में आई
*प्रथमोन्मेष में मिली ॥३८॥

'सूक्ष्म' 'कारण'ने क्यों री,
'स्थूल संघात' को धरा ?
स्थूल कि सूक्ष्म कोई भी,
कारण बात से गिरा ॥३९॥

निर्मल रूप की शक्ति–
नहीं कारण से घिरी।
चिन्मयी रसभक्ति श्री
जो तेरे में रही हरी ॥४०॥

हरी भरी कहाँ तो भी,
तेरी सल्लतिका हरि!?
हरी हैं वृत्तियाँ तूने
हेरती कलिका परी! ॥४१॥

*वसंतऋतु में निर्मल-जन्म फा. कृ. षष्ठी-गुरुवार-प्रभात-९.

'वसंत' ऋतुकी आशा
पतझड़ दशा घुली।
ग्रह है कौन आशा में!?
दिशाएँ दर्द में मिली ॥४२॥

कौन से ग्रह–योगों में
जन्म मेरा यहाँ हुआ!
सत्प्रेमाग्रह योगों में
रहः विरह है रहा!! ॥४३॥

नटु! नैऋत्य में आओ
नृत्य के नटभूप ए!
ऋत है क्या न जानूँ मैं
प्रणति ऋत रूप हे! ॥४४॥

ऋतु–संहार में मैंने
ऋतुका हार है सजा!
तेरे विरह में भी है,
विहारिणी रस ध्वजा!! ॥४५॥

❋ विचित्र विधाता ❋

मेरी प्रसन्न वेला में
दुर्भाग्य जलता रहा।
मेरी विषाद् वेला में
विधाता हँसता रहा ॥४६॥

मेरे शीतल हास्यों में
उष्ण लावा गिरा, बहा !
अश्रु के उष्ण कुंडों में
हिमालय घिरा, रहा ! ॥४७॥

प्रफुल्ल फूल – मूलों में
कंटकों को लगा रहा।
रसदायी दुकूलों में
दर्द दाग लगा रहा ॥४८॥

प्रभु के प्रीति पूलों में
प्रस्तरों को हिला रहा।
अंतः कोमल तूलों में
बड़वा को जला रहा ॥४९॥

मृदुल काव्य बागों में
'अनलास्त्र' घुमा रहा।
स्नेहिल शांत रागों में
'अनिलास्त्र' रमा रहा ॥५०॥

विपुल मन मेघों में
'विद्युदस्त्र' चला रहा।
अमल शरदाभा में
'वरुणास्त्र' मिला रहा ॥५१॥

खुले हेमंत हार्दों में
पर्वतों को बढ़ा रहा।
श्याम–शिशिर–शीलों में
शिलाओं को चढ़ा रहा ॥५२॥

वल्लरी के वसंतों में
पतझड घुला रहा।
दिल, पतझड़ों में भी
वसंत–श्री बुला रहा ॥५३॥

हे विचित्र विधाताजी !
धाता है आप पितृ से !
पुत्री चित्रित है प्यारी
संतृप्ता हिय होतृ सी ॥५४॥

❋ प्रश्नमूढा ❋

त्याग और तपस्या क्या
प्रीतिका प्रतिदान है!?
राग और समस्या क्या
गीतिका गतिदान है!? ॥५५॥

उपेक्षा विस्मृति क्या ही
मैत्रीका मतिदान है?!
चिंतना और चिंता क्या
रीतिका रतिदान है!? ॥५६॥

भावना भग्नता क्या ही,
भक्ति का भावदान है?!
मूर्छना मोहिनी क्या री,
शक्ति का शिवदान है?! ॥५७॥

आसव के सुदानों का
अवसाद प्रदान है?!
आनंद रसदानों का
विषाद प्रियदान है!? ॥५८॥

❋ समस्यामूर्ति ❋

जन्म के साथ ही मेरी
समस्या पूर्ति है चली !
शैशव के खिलौने में
सखा की स्फूर्ति है अली! ॥५९॥

श्री श्री श्यामसखा में जो
समस्या पूर्ति सी बनी !
प्रेम सीमा स्वरूपा सो
सामञ्जस्य रता बनी !! ॥६०॥

उलझा सुलझा मेरा
नहीं कोई सवाल है।
तेरे योग वियोगों का
मात्र एक सवाल है ॥६१॥

❋ बावरी—बावली ❋

स्नेह संभार हैं कैसे
तन में मन भार से।
समुद्र पार से प्यार
मन में वन हार ये ॥६२॥

मधुर! मूढ़ता में मैं
दिङ्मूढ निहारती!
मुझे तो मूढता प्यारी
हृदयारुढ! हेरती ॥६३॥

आगे बढ़ी? हटी पीछे?
पथ प्रभेद हो गया!?
या जहाँ हूँ वहाँ ही हूँ?
कि दिशाभेद हो गया?! ॥६४॥

हे बटोही! प्रतीक्षा में
तेरे में रमती रही।
*उनींदी, बावली या तो
बावरी घुमती रही ॥६५॥

---

* ઊંઘથી ભરેલી

❋ तन–तनुता ❋

इमारत तन श्री में
हड्डियाँ ही अड़ी रहीं!
चुना मांसल हैं थोड़े
अश्रु वर्षा–झड़ी
रही ॥६६॥

प्रचुर जल वेगों में
थोड़ी भी क्षीण हो रहीं।
स्मृतियाँ वे, कलेजे में
लगती बाण सी
रहीं ॥६७॥

चुने का तत्त्व भी कैसे,
चिदाधार
बिना टिके!
उष्णतामान भी कैसे,
गुणाधार
बिना रुके? ॥६८॥

दुनिया के दुराहे[×] में आह ही आह है अहा !
एक ही राह में तेरी चाह ही चाह है महा ! ॥६९॥

चौराहे[+] चित्त से भी क्या? चाहती नीरवा दशा ।
गुण निर्गुण राहों में, मैं चाहूँ नीरजा दशा ॥७०॥

मोह शीत–प्रकोपों में प्रकंपित दशा प्रभो !
भव ग्रीष्म – प्रतापों में अकंपित दिशा विभो ! ॥७१॥

निर्मल पूर[×] पूर्वी में,
आज जो पुर[*] से चला ।
फिर भी पूर है पूरा,
सो सदा भर पूर है ॥ ७२ ॥

न जाने क्या चला मेरा, जो पद पाद दे रहा ।
रोती है लेखनी मेरी, जानती परमेश्वरी ! ॥ ७३ ॥

×બે બાજૂના રસ્તા
+ચાર રસ્તા પડે તેવો ચોક

× જલપ્રવાહ
* તન નગર

❋ विराम कि शुभारंभ? ❋

काया की कोटरी में क्यों—
छिपा हृदय यंत्र है!
'मोहमयी' पुरीमें क्यों
छिपा जीवन यंत्र है! ।।७४।।

हृदय यंत्र के कांटें—
गति में नव उष्ण हैं।
कैसे हैं दर्द के कांटें
प्रेम के मंत्र—पुष्प में!? ।।७५।।

जीवन अंत आया क्या!?
या शुभारंभ है यहाँ?!
रस जृम्भण हैं मेरे
रस संरभ में जहाँ!! ।।७६।।

❋ मध्यमंगल ❋

विघ्न के गणकी सेना
गणनायक नाशिये। काव्यों के मंडपों में ही
श्री गणेश पधारिये ॥ ७७ ॥

नहीं विश्राम गानों का
मेरे मन विश्राम है! मेरे विश्राम हारों की—
श्री शुभारंभ सेव है ॥ ७८ ॥

श्याम मिलाप में मेरी
विघ्नबाधा हरो, हरे। श्याम संयोग मालाएं
हृदय – कुंज में धरूँ ॥ ७९ ॥

वत्सले शारदे मैया !
और वैकुंठ इन्दिरे ! करो प्यार मुझे दोनों
रीझे श्री श्याम सुंदर ॥८०॥

रस रासेश्वरी के श्री
पाद साष्टांग में प्रिया, सत्प्रेमाश्लेषमें पुण्या
माला में मुग्ध हो पिया ॥८१॥

❋ दर्दीला उदधि ❋

विरहाकुल कूलों मे
देवी—देहलता
हिली।
रहः दुकूलमें दैवी
देव—नेहरता
पली ॥८२

वियोगोदधि के जङ्ग
तरङ्ग पाद
छू रहें।
रहें जो रङ्ग में अङ्ग
निनाद नाद
छू रहें ॥८३

अपर भूमि वासी को
सुशांत
करता रहा।
पर प्रवासिनी को तो
अशांत
करता बहा ॥८४

वृंदास्थली–विहारों में
अबला–प्राण
मोड़तीं ×।
जलधि धीर आवाजें
धीरता बल
तोड़तीं ॥ ८५

उदधि उर में मेरी
योगिनी वृत्ति
सो रही !!
नहीं, वहाँ कहाँ शांति !
वियोग वड़वा
रही !! ८६

× વળાંક આપતી

❋ अभिशाप ❋

कौन से कृष्ण पापों से अभिशाप वियोग का!?
धवल अश्रु के धोध
धो पाये नव रोग को ॥८७॥

तेरे वरण में पाया
वरण अग्नि होत्र का।
आये शरण में तेरे करुण रस क्षेत्र में ॥८८॥

आ नख शिख पूरे ही
प्राणों में अग्निपुंज है।
अणु एक न खाली है
फिर भी रस कुंज है! ॥८९॥

श्रान्त औ भ्रान्त सी मैं तो
फिर भी शांत भाव में;
गगन चौक में उड़ूँ
अकेली—
कांत भाव में! ॥९०॥

मिलन—'मधु वेला' को, प्राण पंछी न जानतें
वियोग सिंधु हाला में
सौख्य को सत्य मानतें ॥९१॥

क्षितिज पार वासी को—
छूने का
अभिमान ही,
होएगा लीन—
यूँ क्यों ही—
सुभागी अरमान हे ! ॥९२॥

ललित. शुचि, भावार्द्र
कल्पना प्राण की सखी।
रुचि कोर सुधांशो हे ! प्रेमाधार सदा लखी ॥९३॥

❋ राख का साज ❋

भव्यता भग्नता में मैं, भाव आसव में घुली।
सख्यमें सौख्य को क्यों मैं
सर्वथा
खोजती चली!!॥९४॥

उन रेशम का या तो, श्री मखमल तंतु का,
दुकूल का न धागा है,
सूतली या कि सूत का॥९५॥

गमन मार्ग में मैं ने, बिछाया नहीं वस्त्र है!
मात्र है ढेर भस्मों का,
तन का तनु वस्त्र है!!॥९६॥

राख से रंग का मैं ने, धरा किंशुक आज है।
राख सी हो रही काया,
राख सा
मन साज है॥९७॥

※ स्वाराज्य-साम्राज्य ※

आँखो के खुलते,
मेरे,—
मन में भावना बही।
क्यों खुले नेत्र ये
मेरे
नयनात्म छिपा कहीं ॥९८॥

नयनचंद्र !
मेरे हे !
कुमुद मुरझा रहें।
जीवन रवि !
हे मेरे !
कमल म्लान हो रहें !! ॥९९॥

यह क्षणिक
निद्रा भी,
क्षण शांति न दे रही !
अक्षुण्ण घन
शांति को
जन्म से खोजती रही !! ॥१००॥

सारथि! चिरसाथी हे!

धन्य

साम्राज्य दो मुझे!

[अथवा]

अचिर चिरनिद्रा में,

नंध

स्वाराज्य दो मुझे!! ॥१०१॥

※ त्रिकाल पूजा ※

संसृति सुखदुःखों की
'भूतकालीन'
याद में ।
'वर्तमान' वृथा होता वहे 'भावी'—सुपाद में ॥१०२॥

पर श्यामल यादों में 'भूत' अद्भुत ही बने ।
विशिष्ट 'वर्तमान'—श्री
'भावी' सुभव्य
भी बने ॥१०३॥

अनंत !
आरती तेरीः
भावी
औ
वर्तमान भी,
करे भूत प्रमाणों में
रस संमान गान वे ॥१०४॥

जिलाती है मुझे—
श्याम !
स्मृति—
अतीत गान की !
और भविष्यकी—
आशा,
कृतियाँ—
वर्तमानकी ॥१०५॥

आर्ति
औ
अश्रुमालाएं
अकुलाहट
आत्म की।
गूंथतीं हियहारों को—
प्राणेश परमात्म के ॥१०६॥

❋ नीलम माला ❋

माला नीलम की

मेरी,

नहीं,

तेरी तुझे विभो !

स्वीकारो रसमाला को

'श्यामा'—स्वामो ! प्रभो ! प्रभो ! ॥१०७॥

हृदय – खंड काव्यों के

अखंड,

कतरें गिरे !

नीलममणि के जैसे

नीलमणि !

तुझे धरें !! ॥१०८॥

श्री गणेश चतुर्थी
गुरु प्रभात
सं २०१३

२९ वी अगस्त ५८
निवास स्थान
बम्बई.

स्फटिक माला [३]

स्फटिक माला

अनुष्टुप्

❋ आवरण भङ्ग ❋

+रसावरण भङ्गों में,
'रसो वै सः' यहाँ बसा !
*वृत्तिवस्त्र चुरा के तू
जीवनडाल से हँसा !! ॥१॥

रस कोकिलकी कूकें,
बहलाकर तू चला।
विरही हियकी हूकें,-
सहलाकर तू चला ! ॥२॥

अंगूठी है अनूठी ही,
'श्याम' नाम लिखा वहाँ।
रेखाएँ हस्त की रूठी,
तेरा श्री हस्त है कहाँ!? ॥३॥

+आवरण भङ्गः-आत्मसाक्षात्कार *ચીરહરણ લીલાનો આધિદૈહિક, આધ્યાત્મિક ભાવ. -ડુસકાં ભરી રડવું

चुभती 'तुलसी माला',
चूमता प्रिय !
तू कहाँ ? !
'मङ्गल सूत्र' की माला,
मंगलाश्लेष
है कहाँ ! ? ॥४॥

तेरे कृष्ण ! वियोगों में
कंचुकी
फटती रही ।
त्वचा भी फटती देखी
कलेजा
फटता रहा ! ॥५॥

×कगारों पर कूलों में
कंदरा और कुंज में !
कौंधती बिजली में मैं
झांकती कीर्तिराज ! हे ! ॥६॥

×ઊંચા કિનારાઓ

❋ मनाना ❋

कुटिल कुंतल कैसे,
तुम्हारे भाल झूलते।
चूनरी पालवों में मैं
छिपाती केलि वेलि में ! ॥७॥

ओ पीताम्बर धारी हे !
पाली पीली प्रभा प्रीति।
पीले पालव में कैसी
छिपी नीलमणे ! रीति ! ॥८॥

हे गोविंद ! गला गीला,
गाल लाल मिला जुला !
श्री रस बाल की लोरी
गाऊँ ताल–हिलोर में !! ॥९॥

बिछोह दर्द से भारी
न सन्मान सकी तुझे।
इससे क्या रूठे राजा !?
मनाती आज आ सखे ! ॥१०॥

❋ पुण्य क्रीत पर्व ❋

श्यामल रंग से पूरुं,
निर्मल रस पत्र जो;
परंतु ताम्र-सा रंगी,
हो जाता मन पत्र सो ॥११॥

सरिता स्नान पाते हैं
नेत्रों के +उपनेत्र ये।
+उपनयन बेचारे
देख पाते न पत्र को ॥१२॥

लेखनी कांपती प्यारी,
छोड़ती साथ हस्त का।
टूटती मन तंत्री भी,
छोड़ती हाथ सुस्त सा ॥१३॥

नीचे उपर झोंकों में
फूलों में फूलती हरे।
लिख पाऊँ; न पाऊँ या
दिलमें घुलती हरे! ॥१४॥

+ ચશ્મા

तेरी ही वेदनाओं के
शूलों में पलती प्रभो!
तेरी ही भावनाओं के
फूलों में फलती विभो! १५॥

हरि विरह की व्याधि
पुण्य क्रीत सुपर्व है!
अश्रु रत्नाकरों से ही
मुझे नित्य सुगर्व है॥१६॥

❋ कमल कुटीर ❋

कमल पत्र की मैं ने, कुटी एक बनाई है।
तेरे तुषार पातों से हो रही टूक टूक है ॥१७॥

है 'कमल कुटीर'–श्री या 'कलम कुटीर' है ?
कमल कुटियाओं में 'कमलाकांत' कीर है !!१८॥

ललित ललका मेरा
दिल–दल निहारते ।
अभंग थनगा कैसा
त्रिभंगी रूप हेरते !! ॥१९॥

दिल के एक कोने की
गहरी एक टीस को,
दिल
का दूसरा कोना,
देखता रस हास से ॥२०॥

काश ! बाँसुरियाँ के सो
सजीले अरु दर्दीले ।
सुनाई न पड़े होते
तरल रस बोल जो ॥२१॥

❋ प्राण प्रतिष्ठा ❋

प्रवेश सम संयोगी
सोपान सम योग है।
समीर सम माना जो
मंदिर सा वियोग है ॥२२॥

प्रिय प्राण प्रतिष्ठा है,
मेरी विरह मूर्ति में।
यष्टि लता ज्यों इष्ट
एकांत, प्राण पूर्ति में ॥२३॥

गाढ निश्चेतना में है,
मेरी अगाढ चेतना।
मृदुल मनतानों में
भरी गंभीर यातना ॥२४॥

तरल वृत्ति में कैसी, सरल स्निग्धता घना!
वितरल रसा कैसी, है घनश्याम में घना! ॥२५॥

❋ स्वाति मोती ❋

प्रिय पुतलियाँ कैसी,
खेलतीं मेघमाल सी।
कपोल कमलों में वे,
बरसें नभ माल से! ॥२६॥

कल कल बही कैसी
ताल सी रस निर्झरी
बाल अरुण रश्मि सी
वरुण–चाल सुंदरी ॥२७॥

आनंद गिरि से कैसी
गिरती गंग धार सी।
अंतर-पीर पानों में
बांधी सौभाग्य भार सी ॥२८॥

मन गगन से कैसी
*पावस नेत्र से झरी।
स्वस्ति स्वाति सुयोगों में
रस नक्षत्र में गिरी ॥२९॥

---

* વરસાદ

मेरे
आँसू
बनें
मोती
तेरी
हृदय-शुक्ति में।
बने
सो
'मोहिनी माला'
तेरी
भावार्द्र
शुक्ति में ॥३०॥

❋ पुलकें पलकें ❋

प्रिय पुलक में मेरी
पलकें पल के लिये !
छोड़ती निज धर्मों को
अलकावलि के लिये ॥३१॥

हो गई जड़ वे भोली,
नहीं, चिन्मय हो गई ।
तेरी चितवनों में ये,
निकुंज वन खो गई ॥३२॥

अपलक प्रिया आंखें
तुझ में डूबती गई ।
या अशांत वियोगों में
परम शांत हो गई ! ॥३३॥

❋ परम्परित विराम ❋

तेरे
योग वियोगों ने,
आँखों को भार दे दिया।
आँखों ने बुद्धि को सौंपा,
बुद्धिने मन को दिया ॥३४॥

नाड़ी को
मन ने सौपा,
नाड़ी ने तंतुको दिया।
तंतुने नाप से नापा,
वे तो विरूप खो गया ॥३५॥

तंतु ने
प्राण कोषों को,
प्राण व्याकुल हो गये।
प्राण प्राणेश की ओर
फिर आकुल सो गये ॥३६॥

'घट कुट्टी प्रभातीया'

न्याय सी

प्राण की गति।

प्रिय प्राणेश पत्रों में,

'पूर्ण विराम'

की गति ॥३७॥

वियोग के झकोरों से

थिरके

गीत गीत ये।

प्रलयंकर आँधी से,

थिरके

पात पात ये ॥३८॥

※ कसक में मुसकान ※

सीमित
स्मित फूलों ने
आंसु
अमित
दे दिये।
अङ्ग व्यापार यत्नों के
अंतर रत्न ले गये ॥३९॥

बिलाती रैन अश्रु से
भुलाती नैन जाल से।
ठगाई, दिन, हासों से
फूलाती नंदलाल से ॥४०॥

प्रिय कसक में मेरी
मृदु आह्वान तान है।
सिसक पड़ती छाती
आँखो में मुसकान है ॥४१॥

किलकना दिखा मात्र
पंछी मंडल में सखी,
सिसकना उर—श्री का
मेरा मंडन है सखी ! ।।४२।।

स्वाधिकार सुहासों का
जीवन वन में नहीं !
आसुओं को
बहाने को
कोना भी
एक है
नहीं !! ४३

⁂ मित्र युगल ⁂

आँखों में बरसे पूरी, 'वरूण देव की' कृपा
प्राणों में खेलती कैसी
'श्री वैश्वानर' की कृपा ॥४४॥

विरुद्ध कहते लोग
परम प्रिय मित्र वे ।
एक का एक पोषी है मेरे मानस तंत्र में ॥४५॥

ज़िंदगी भर जिन्हों ने, रक्खी है अश्रु से सनीं !
बंदगी भी अरे मेरी,
बंदीखान वहाँ बनी ॥४६॥

मुक्ताओं की महाराज्ञी
ज्योति का कांत ! ताज हे !
मेरे मानस मुक्ता को स्वीकारें महाराज हे !! ॥४७॥

मेरा भद्र अभद्र क्या ! ?
भगवन् ! भद्र धाम हे !
अरु आश्विन भाद्र क्या ?!
मेरे अश्रु बिराम हे ! ॥४८॥

❋ पुष्प पाद्य ❋

श्वास प्रश्वास जैसी ये तुम्हारी स्मृतियाँ बहीं।
स्नेह सुवास जैसी ये
कलियाँ हँसती रहीं! ॥४९॥

श्रीपते! वनमाली हे!
देखो उद्यान को हरे!
स्मित सुमन से पूर्व अंकुर मुरझा रहें ॥५०॥

रसार्द्र सरिता भी जो, श्रीपद मूल से बही।
किंतु भाव विरानों में
आते ही सूखती रही ॥५१॥

एकबार प्रभो मेरे,
मोती को फूल रूप में—
आंसू को आत्म अर्घ्यों में, स्वीकारें व्रज भूप हे! ॥५२॥

❋ सुरभी कि सुरभि ?! ❋

बलखाती रही धेनु
श्री वेणु धर–याद् में ।
मद्माती लता जैसी हँसती वेणुनाद् में ॥५३॥

धेनु की धारणा कैसी ! धेनु का पथ लक्ष्य भी !
धेनु की वेद्ना कैसी !
धेनु की मूक वंद्ना !! ॥५४॥

प्रशांत सुरभी ने भी
सुरभिमय भाव से,
लता को पनपाया था काव्य की रस सेव से ॥५५॥

सुरभी नंदिनी माता देखे इधर की धरा
नहीं है चैन आत्मा में
देखे उधर की धरा ॥५६॥

सन्नारी पूजती कोई
थोड़ा सा प्यार भी करे,
किंतु गोमात का कोई आत्मत्राण नहीं करे !! ॥५७॥

❋ काल–कला ❋

विरस पृष्ठ में भी है
सरस पृष्ठ भूमिका !
काल की कष्ट–सेना में
कला की तुष्ट भूमि है ! ॥५८॥

कौन सी लेन देनों से
काया की पुतली यहाँ !?
तेरी ही देन लेनों में—
नेत्र–पुतलियाँ वहाँ !! ॥५९॥

लौटती इन सांसों को–
हूँ ही हैरान देख के।
मेरे कचन ओसों में—
हँसते प्राण राख से ॥६०॥

रण के मार्ग में मैं हूँ
मरण अमृता मति।
तरण में विभो ! तू ही
शरण में प्रभो ! गति ॥६१॥

देह क्षरण में भी है
ऊर्मि झरन ताल में।
कलाप किरणों मे भी
कलापी–श्री कलात्म में ॥६२॥

डग मग न हो मेरा,
मग से डग सोचती।
तू रग रग में छा जा
हे अङ्ग! मात्र याचती ॥६३॥

※ रथ-पथ ※

नहीं जीवन मेरा है-
तो क्यों मैं सारथी कहूँ !?
जीवन रथ तेरा है—
तो क्यों जी प्रार्थिनी रहूँ !? ॥६४॥

छोटी सी व्रज वीथी हूँ—
मोटे से रथचक्र हैं।
उड़ाते रेंज को जातें-
क्यों कुचले सुपंथ को ! ॥६५॥

सौभाग्य; पथ का कृष्ण !
तेरे सुरथ चक्र से-
अहा कुचल जाते यें
मचलते रसार्थ वे ! ॥६६॥

चक्रधारी प्रभो ! तू ही,
एकांत पथ-भूप सा।
एकांतिक प्रभावों में-
अनेकांत स्वरूप सा ॥६७॥

❋ तिमिर मिलन ❋

मुझे निर्वेद है देव ! मित्र और अमित्र में ।

मुझे सत्प्रेम है तेरे प्रिय पुण्य स्वरूप में ! ॥६८॥

निर्मल ध्येय से भिन्न, वृत्ति से भी अभिन्न वे ।

सरस धारणाएं जो, जगमें खिन्न, छिन्न हैं ॥६९॥

मनः ज्योति यहाँ मेरी, जली कि न जली जहाँ ।

बीहड़ अंधकारों में लीन होती चली कहाँ ॥७०॥

फेंक कर अशांति में क्या मिला भव—भाव से ?

कहाँ प्रशांत तू कांत ! क्या मिला परिहास से ! ॥७१॥

❋ पुष्पाञ्जलि ❋

मेरी ये कल्पना को क्यों, जल्पना तू बना रहा !
सरस वंदना को क्यों, वेदना में मिला रहा !? ॥७२॥

मनखंडहरो में भी कला का इतिहास है !
मूर्ख ! तोड़ दिया तूने खेल के परिहास में ॥७३॥

तुझे 'मूर्ख' कहे जो सो महामूर्ख शिरोमणि ।
मन, धी खोजता घूमे चित्त चोरशिरोमणि ! ॥७४॥

कितव ! तव कर्तूतें जानी थीं पहले कहाँ ।
बीताई बीतकें तूने धाई धाई कहाँ कहाँ ?! ॥७५॥

हे हरे ! प्रिय ! तू मेरे मन में बारबार री—
क्यों आ आ कर हैरानी रचता जय हार को !? ॥७६॥

भले मित्र ! जरा सोचो छेड़ते क्यों मुझे अरे !?
विश्रामघाट में मेरी सोने दो वृत्ति को हरे ! ॥७७॥

❋ स्फटिकमालो ❋

दामोदर प्रभो ! मेरे
दाम सी दैनिकी दशा ।
उद्दाम सरिता जैसी–
अश्रांत लेखनी दशा ॥७८॥

आशा झंकार में या तो
निराशा छिन्न तंतु में,
हर्ष नूपुर में या तो
विषाद सूत्र शांति में– ॥७९॥

एक स्वरावली गाई
न शेष क्षण हैं बची ।
अनेक भव की [१]काई
अशेष नष्ट हैं जची ॥८०॥

नहीं कोई अनुष्ठान
किया है पुण्यश्लोक हे !
दोलायमान सांसों से–
त्रि माला मात्र हैं जपीं ! ॥८१॥

---

[१] જામેલા બારીક મેલ

विधि विधान की कोई
माला वह्नी न हो सकी।
बादल दल पल्ल में
दल दिल-कला रुकी! ॥८२॥

हृदीश! अस्फुटा वाणी
संस्फुटा रसबिंब में।
शुद्ध स्फाटिक की माला
प्रस्फुटा प्रतिबिंब में ॥८३॥

❋ गीति या गति !? ❋

मेरे छोटे जीवन के,
प्रकरण प्रकीर्ण जो।
अणु कवन हैं मेरे,
वरणापन्न बीन सो ॥८४॥

शांत स्तवन में मेरा,
रक्षण मूल कांत तू।
अशांत गान में मेरा,
तारण फूल शांत तू ॥८५॥

गति के उबखडों में
गीति अखंड राह में
करण चरणों में वे
किरण मात्र चाहते ॥८६॥

हिय हरण से हारी,
हरिणी हेरती तुझे।
वायु दक्षिण हो तेरा,
दक्षिणा सद्दया मुझे ॥८७॥

❋ अनंतरूपिणी ❋

श्री कालिन्दी नदी जैसी,
धीर गंभीर है गति।
और श्री जाह्नवी की भी,
है प्रोत्तुंग कहीं गति ॥८८॥

कभी है लघु वापी सा,
कहीं गहन कूप सा।
कहीं सरोज शोभा से,
सत्सरोवर रूप सा ॥८९॥

महा समुद्र के जैसा,
प्रचंड रूप है कहीं।
सुतन्वो निर्झरी जैसा,
प्रशांत रूप है कहीं ॥९०॥

किंतु अनंत रूपों में
अनंत मधुमोल है।
सलीला रस लीला से।
लोल सलिल बोल है ॥९१॥

❋ भाग्य भावन ❋

प्रशांति ब्राह्म वेला की
अरुण बाल लालिमा।
प्रभातीय प्रभा शुभ्रा
छिपी भाव वनाली में ॥९२॥

ताप मध्याह्न का भी है,
रंग भी सांध्यकाल के,
रात्रि की जड़ता भी है
मेरे सद्भाग्य—भाल में ॥९३॥

निर्मल कृष्ण रंगों में
कृष्ण ! तू अभिषिक्त है।
कालिमा लालिमा में भी
श्री जसुलाल युक्त है ॥९४॥

मेरे कवन राज्यों के
राज राजेन्द्र ! हे प्रभो !
मुकुट भाल का तू ही
प्रिय प्राणेन्द्र हे प्रभो! ॥९५॥

❋ वल्लरी कि वल्लवी ?! ❋

शरीर क्षेत्र में श्याम ! मृत्तिका गौर वर्ण की ।
क्षेत्रज्ञ ! पुरुषश्रेष्ठ !
बोया है
बीज वर्ण का ॥९६॥

कोमलांकुर पौधे ये सोहे प्रेमिल पर्ण से ।
वियोग से नहीं बेधो
तेरे
कातिल बाण से ॥९७॥

हो फलित निकुंजों में प्राण पुष्पित पल्लवी ।
वल्लरी—रस आम्रों में
झूमे
'निर्मल' वल्लवी ॥९८॥

❋ आत्मवरण ❋

माधव !
मुग्ध रूपों में
रूप मेरा छिना गया !
मोहन ! माधुरी में यों क्यों मुधा धैर्य दे गया !? ॥९९॥

सुधीर
नायिका तो भी
धैर्य का नव अंत लो।
धीरनायक ! ओ मेरे ! अधीर मन आ चलो ॥१००॥

जैसी तैसी,
कि कसी भी,
तो भी तेरी सुवल्लभा।
जीती हूँ पर जीने का दे दो औषध दुलभ। १०१॥

कन्या
कुलीन है, कान्हा !
स्वीकारो गोप लाल हे !
सौम्य सरस्वती देवी मैया का मन फूल है !! ॥१०२॥

क्या
छोटी है,
कि मोटी है,
तेरी मेरी
पिछान जो;

सो जानो
तुम
रासेन्दो !
बिन्दु से
तुम -
सिन्धु हो ! ॥१०३॥

❋ अद्भुत सुरमा ❋

जगा नहीं सकी—
प्यारी, ऊषा पुण्य सखी मुझे!
सुला नहीं सकी—
मेरी; रात्रि शांत सखी मुझे ॥१०४॥

धूप या छाँह की यारी,
सुबह और साम की,
नहीं है मन में यादी
विरह वेद साम में ॥१०५॥

सलाई किरणों से
क्या; सुरमा सफेद आँख में,
श्री ऊषा आंजती—
कैसी, शरमाती कुछ आँख से ॥१०६॥

श्री रजनी
सखी रानी
सुरमा कृष्ण नेत्र में-
शलाका
कर में काली, देती
अंजन मात्र सी ॥१०७॥

❋ 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' ❋

'शिव' साहित्य सत्त्वों में,

'सुंदर' हित तत्त्व में,

'सत्य' निहित तत्त्वों में

खिले खेले प्रभुत्व सो !! ॥१०८॥

अनत चतुर्दशी	दिनाङ्क	निवासस्थान
शनि-सन्ध्या, २०१३	७ / ९ / १९५७	मोहमयी

सुवर्णमाला [४]

१ अरूप-रस-गर्विता !

२ गिरिधर-धारिणी !

३ चितेरी

४ कवयित्री

५ मन-वीणा

६ तिरोहित

७ विरहप्रांत

८ अक्षयधारा

९ क्या है !?

१० शल्यक्रिया

११ कहानी कि कथा !?

१२ समर-सारथि या रससाथी !?

१३ सुख अक्षर तिजोरी में

१४ आरती कि आर्ति !?

१५ अङ्कुर या अङ्गार ?!

१६ अरुण बाल

१७ स्वर्णमाला......

सुवर्णमाला

[अनुष्टुप् छन्द]

* अरूप-रस-गर्विता *

महारूपनिधे प्यारे ! नहीं हूँ 'रूपगर्विता'
तो भी स्वरूप भावात्मा अरूप - रसगर्विता !!
॥१॥

मन-मही-महामान्य ! नहीं हूँ मानगर्विता,
प्रमाणातीत भावों से रससंमान-गर्विता !
॥२॥

धी-नायक परमात्मा ! नहीं हूँ बुद्धिगर्विता,
सूक्ष्मातिसूक्ष्म सत्त्वोंमें ! सूक्ष्म-धी-रसगर्विता !!
॥३॥

* गिरिधर–धारिणी ! *

स्वप्न की प्रिय आँखों से 'हिता' सुंदर नाड़ में–
नयनचंद्र देखा था रसकदम्ब–आड़ में !
॥४॥

पलक मिलने में क्यों हिय–मिलन हो रहा !
पलकें खुलने में क्यों पिय खिसकता रहा !
॥५॥

हूँ परी भी नहीं कोई जिससे पलवार में–
खाट के साथ लाऊँ मैं तुझे श्रीकंठहार को !
॥६॥

श्री ऊषा चित्रलेखा भी दोनों रूप स्वयं बनी !
अनिरुद्ध–प्रभा–श्री में निरुद्ध धी–विभा सनी !
॥७॥

विहग, चित्रलेखा के रूप ले उड़ती अली !
प्रियाभिसंधि में 'श्यामा' संध्या में श्याम ला चली !
॥८॥

गिरिधर ! रहा तू तो मैं गिरिधर–धारिका !
गहरी नींदमें से मैं जगाती रससारिका !
॥९॥

* चितेरी *

तेरा चित्र मुझे भाता चितेरी चित्र की नहीं।
बेचारे चित्रकारों ने देखा मित्र ! तुझे नहीं !
॥१०॥

स्मृति की चित्रशाला में सुचित्र रसमंत्र से—
निहारें हारमाला से मेरे हृदयतंत्र से।
॥११॥

क्या कहूँ चित्र ये न्यारे ? या महा चित्रकार जो !
चित्ररूप हुआ प्यारा विराट चित्रकार सो !
॥१२॥

दिल—फलक में फेरी कल्पना रसरङ्ग में—
वृत्ति की तूलिका कैसी चलती श्वास सङ्गमें !
॥१३॥

मुझे चित्र जचा अच्छा शिला की जब आड़ में—
बढ़ा तू कुंजरानी के शील सद्गुण होड़ में !
॥१४॥

प्राणप्रेमी प्रियात्मा को रुलाने में शिरोमणि!
तेरी अंखुडियों में वे देखे थें अश्रु के मणि!
॥१५॥

मोहन–नयनों की थी मधुमधुर माधुरी,
मधु भी मधु ही होवे जहां सुमूर्त चातुरी!
॥१६॥

खारे आँसू बनें मीठे मैंने चाखे प्रसाद से,
और आँचलमे झेलें शेष अंतरनाद में।
॥१७॥
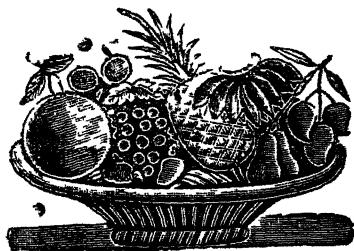
※ कवयित्री ※

तेरा कवन है मेरा जीवन वेणुराज हे !
अधीर औ अधूरी हूँ सोहिनी स्वरराज हे !
॥१८॥

अधूरे ही अधूरे हैं मधुर गीत, कीर से !
नहीं छोटी लकीरें हैं तो भी प्रेम लकीर वें !
॥१९॥

लकीरें भी नहीं सीधी, टेढ़ी मेढ़ी अड़ी रही !
बीथी भी प्रेम की टेढ़ी टेढ़ा तू भी बड़ा रहा !
॥२०॥

दशभङ्गी भले अङ्ग ! त्रिभङ्गी अङ्ग में रहा !
काव्य के रसभङ्गों को भृकुटी भृङ्ग में बहा !
॥२१॥

मेरा गुन गुनाना ही गुंजन भृङ्ग का गिना !
मोहन को मनाने में रंजन रङ्ग का चुना !
॥२२॥

* मन-वीणा *

प्रारब्ध तप्त लोहे से बनाये कुछ तार हैं,
जुड़े है काल काष्ठों में तो भी जीवन सार है।
॥२३॥

पर कृष्ण-कृपापुंज—सांचे में तार तार है।
बनी है दिल की बीना तार वे इकतार हैं॥
॥२४॥

मिट्टी के खेलमें है क्या श्वास की बीन के बिना!
कहाँ तक खिलौने की चावी है गतिमान री?!
॥२५॥

लम्बी कुंची अहा कैसी कृष्ण-क्रीड़न-दान में,
खिलाड़ी का खिलौने में मूर्तिमंत सुगान है!
॥२६॥

गान के साथ 'मैं' 'मेरे' शब्द क्यों सखि! आ रहे!?
'म' कार मात्र भाषा मे तेरे ही गान गा रहे!!

मीठा 'म' कार है तो भी श्री सारीगम तान में—
'तू' रूप तान में कैसा रहः आरोह गान है!
॥२८॥

सुहाए सोहिनी सूर, स्वर स्वारस्य बंदिनी!
अंतः संगीत सारों में श्री नंदलाल नंदिनी!
॥२९॥

गायिनी क्यों बनूँ मैं तो श्री वीणा मान की पत्नी!
'निर्मल'—रस तंत्री के स्वर आलाप में सनी!
॥३०॥

श्री वीणाधारिणी माँ की बेटी हूँ दिल लाड़ली!
फिर भी क्यों नहीं हूँ मैं वीणा की वादिनी अली!
॥३१॥

* तिरोहित *

ध्यान विश्राम की कुंजे स्मृतियाँ उपधान सी
वियोगशूल की शय्या फूल या दिलदान ही !
॥३२॥

हो रहीं हिलचालें ये तनिक तनतंत्र में ?!
नहीं है सखि ! सांसे ये, तनु से रसमंत्र हैं !
॥३३॥

तुम्हारी मृदु मुस्कानें प्रीति पुण्य पराग में,
छिपाई स्वर की तानें रीति के रम्य राग में !
॥३४॥

तुम्हारी बावरी राहें तुम्हारे हर्म्य बाग में !
वियोगी मधुपी आहें छिपाई नव्य आग में !
॥३५॥

इधर पार्श्व को फेरूँ ! फेरूँ उधर पार्श्व को ! ?
किधर मुख को फेरूँ ! कहाँ तू प्रिय पार्श्व में !?
॥३६॥

पंखो से उड़ते कैसे आ सके यह सारिका ?
गगनाङ्गण में कैसे आ सके यह तारिका ?
॥३७॥

* विरहप्रांत *

'अहं मम इदम्' सारा कहाँ से यह आ गया ?!
'त्वमेव तत् तत्त्वम्' क्यों यहाँ से छिपता गया !?
॥३८॥

सोने का जगने का क्या नयनाध्याय है सखि !?
या अनंत पदों में क्या शयनाभ्यास है सखि !?
॥३९॥

रजनी दिन संध्या में भिन्नता दिखती नहीं।
प्रिय विरह में भी मैं अभिन्न खेलती रही।
॥४०॥

क्षितिजप्रांत के वासी ! दूर संगम बाट है !
विरहप्रांत में मेरा पुण्य विश्रामघाट है !!
॥४१॥

कैसी अशांत तंद्रा है ! कैसे अशांत योग हैं !
कैसी प्रशांत निद्रा है ! कैसे शांत सुयोग हैं !
॥४२॥

अशांति शांति–कुक्षि मे, शांति अशांति में कभी।
अशांति शांति तेरे में प्रशांत! लीन हैं सभी!
॥४३॥

रात्रि ज्यों बितती जाती, जड़ देह अचेत सा।
फिर भी मन में राजे सच्चिद्द्रुम सचेत सा।
॥४४॥

×सूचि भी न प्रवेशी हो ऐसे तिमिरपंथ में–
देखती कृष्ण यामा में, श्रीकृष्ण रसकंथ हे!
॥४५॥

× સોઇ

✳ अक्षय धारा ✳

नयन जल धारा को धो रही जलधार से
खूटता जल धोने का आँखो की रसधार में !
॥४६॥

प्राणी तालाब पानी से अपना मुख धो रहें।
सर संमुख मेरे ये मेरा वदन धो रहें !
॥४७॥

कूप के जल से यात्री स्नान नहीं करे अरे,
कूप की पास जाऊँ क्या पाताल कूप हैं भरे।
॥४८॥

नल के द्वार हारों में दिखतीं दमयन्तियाँ।
भरे हैं हियमें मेरे सुंदर रस मोतियाँ !
॥४९॥

कुमुद को धराऊँ क्यों कुमुद मृदु कांत हे !
कुमुद ताल दंडों से नेत्रप्रांत अशांत हैं !
॥५०॥

छिपायें रत्नगर्भा ने अनमूल रसाश्रुएं !
दूराये रसगर्भा ने व्रज के तरु ओस में !
॥५१॥

भूलुं क्या अश्रुएं तुम्हें मेरे जीवनसार हो !
कविता प्रेरणा तुम्हीं हृदीश रसहार हो !
॥५२॥

※ क्या है !? ※

गिनती व्योमतारों की, महार्णवतरङ्ग की–
हो सकती कभी भी है श्री महाकाल–अङ्गकी,
॥५३॥

पर विरह दुःखों की गणना हो सके नहीं !
प्रलय के रङ्गखेलोंमे श्री गण सैन्य है यहीं !
॥५४॥

इसे संलाप सा मानूँ ? या तो विलाप सा कहूँ ?!
इसे आलाप ही मानूँ ? या तो प्रलाप ही कहूँ !?
॥५५॥

यही क्या श्याम शाही जो नील गगन से बही ?!
कल्पना परिधानों में श्यामला स्मृति हो रही !!
॥५६॥

शुभ्र श्यामल होता है, श्यामल शुभ्र भी बने !
शीतल किरणों में ही स्नेहिल रङ्ग हैं सनें !
॥५७॥

विरह के पेड़ में उगें जो *झुरमुट पात हैं,
पुकारते तुझे कैसे मनमुकुट ! रात में !
॥५८॥

* વૃક્ષની આગળ નીચે ઊગેલા નાનાશા છોડા, જેઓ એકબીજામાં ભળી નાનકડી કુંજ બનાવી દે.

* शस्त्रक्रिया *

सुंवाया क्यों मुझे एसा विस्मृतिकर औषध !?
'इससे क्या किया तूने शस्त्रप्रयोग, योगज !?
॥५९॥

"दोषों की खान ही" कोई भले मुझे कहे कहे।
"गुणों की खान ही खान" अस्तु कोई भले कहे !!
॥६०॥

खानों के खनने में क्या मेरा तू रस–खान है !!
मीमांसो सूनने का भी नहीं समय शेष है !!
॥६१॥

प्रसन्न–खिन्न होने का विपल पल भी नहीं–
चपला काल–वेला में चपला–प्राणनाथ हे !
॥६२॥

विकृत आयने में तो आकृति अन्यथा दिखे।
विशुद्ध दर्पणश्री में यथार्थ प्रतिमा दिखे !!
॥६३॥

वदन–गुण दोष क्या, रससदन हो रहा,
आनंद–सदनों में सो चदंनबन जो रहा !!
॥६४॥

गुणदोष दुरंगे ही तेरे पूजनथाल हैं !
हृदय गुण में तेरी गुंथी सद्‌गुणमाल है !
॥६५॥

✻ कहानी कि कथा !? ✻

चिर पुरातन; श्याम ! तेरा सम्बन्ध है सखे !
नित्य नवीन; हे नाथ ! रस प्रबन्ध है सखे !
॥६६॥

लेखनी हस्त में ही है पर स्थिर न हस्त में ।
भूकंप–सा हिलाता है वियोगी मन अस्त सा ॥
॥६७॥

बिताई जन्म से तूने सो अब ही सही, सही ।
एक तो सुन लो मेरी जिंदगानी रही सही !
॥६८॥

लम्बी एक ही गाथा है मेरे तेरे सनेह की !
अथवा एक छोटी सी कहानी आह राह की !
॥६९॥

फूल को फूल योगों में माली ने जन्म जो दिया ।
शूलों की सेज शूलों में मन फूल बिछा दिया ॥
॥७०॥

नयनयुक्त ये प्राणी क्यों "व्याख्यात्री" कहे मुझे !?
अंतः नयन देखें तो सुमौन व्रतिनी कहे !!
॥७१॥

"सुप्रसिद्ध" कहे लोक अप्रसिद्ध विशुद्ध हूँ।
अदृश्य सिद्धभावों में रस संसिद्ध मुग्ध हूँ !
॥७२॥

नहीं हूँ मानवी प्राणी, नहीं हूं कोई देवता।
श्याम का शुक पंखी हूँ प्रिय है 'शुकसंहिता'× ॥
॥७३॥

× શ્રીમદ્ ભાગવતજી

❋ समर-सारथि या रससाथी !?❋

संग्राम ज़िंदगी भारी श्री कुरुक्षेत्र भूमि में ।
जीवनसारथि मेरा श्री धर्मक्षेत्र भूमि में ॥
॥७४॥

वह है साथ में मेरे नहीं अधिक सैन्य है ।
उन्नत सिर मेरा है देव चरण-दैन्य है ॥
॥७५॥

प्रत्यञ्चा पंक्ति है शक्ति, कमान लेखनी बनी !
औदार्य शर में भक्ति, रसात्मा लक्ष्य में सनो× ।
॥७६॥

सूत्र हार धनुष्यादि लक्ष्यवेध रसेश जो !
सारथि रथ रूपों में परिणत रमेश सो !
॥७७॥

विविध योग रङ्गों में सौंदर्यदृष्टि में बहूँ !
अनेकविध अङ्गों में औदार्य वृष्टि को बहूँ !
॥७८॥

× લીન

विधविध विधानों में विरस तुष्टि को लहूँ !
एकविध सुभानों में सरस सृष्टि को लहूँ !
॥७९॥

भस्मी भूत हुआ ही है हृदय रस यान जो।
सारथी है इसी से क्या दिखता गतिमान सा !?
॥८०॥

हे अकलित संकेत ! अवकाश न शेष है !
कलामय कलातीत ! कला के अवशेष हैं !
॥८१॥

* सुख अक्षर तिजोरी में *

दर्श मुझे न देने जो, लुभाना तुम ले चलो ।

नहीं मुस्कान देनी जो, रुलाना तुम ले चलो ।
।।८२।।

दुःख ही दुःख छाया है, जगती तल में सखि !

सुखश्री शब्दकोशों में पिहित है सदा सखि !
।।८३।।

सुख के क्षण मानें जो वे भी आभासपूर्ण हैं ।

पदार्थ [1]चूर्ण है [2]चूर्ण, प्रतिभासित पूर्ण या ।
।।८४।।

[3]चूर्णिका को लिखूँ कैसे उन्मुक्त मन मुक्त जो,

सोने की शृंखला में क्यों देखा गगन मुक्त सो !
।।८५।।

---

[1]ચૂરણ, [2]ચૂરે થયેલ, [3]પદ્યનો સત્‌વાંશ ગદ્યમાં.

❋ आरती कि आर्ति !? ❋

मनमोहन ! मैं तेरी, अलमस्त पुजारिनी !
आरती इन हाथों में लिये खड़ी सुहागिनी !!
॥८६॥

श्री–रति आरती कैसी रहः नंदन ही रही !
पूरी सुमन मोती से विरहानंद दे रही !
॥८७॥

यही है आरती तेरी स्वीकारो आत्मदेव हे !
देखो, पर नहीं छूना ज्योति की तप्त सेव है !!
॥८८॥

नहीं है आरती आत्मन् ! आर्ति अंतरनाथ की !
हे जनार्दन ! पूजा का, है नहीं अंत औ अथ !
॥८९॥

* अंगुर या अङ्गार ?! *

मिठे अङ्गुर आरोगो, भूली निरी, अरे हरे !
ये तो अङ्गार हैं भारी विरहागार हैं भरें !
॥९०॥

रम्य अङ्गार पात्रों की सजावट सदा यहीं।
मेरी शिशिर बाधा की रुकावट करे यही।
॥९१॥

ब्रह्मांड वह्निका भोज्य, तेरा भोजन अग्नि हैं।
हे महानल ! साष्टांग श्री वैश्वानर—मग्न हे।
॥९२॥

महा दावानलों के ही किये हैं पान खेल में !
वह्नि से विप्रयोगों के किये सुपान मोल में।
॥९३॥

और अङ्गार रूपों को किये अङ्गुर रूप में।
रचें मिलन रासों के रस आसव कूप से॥
॥९४॥

* अरुण बाल *

बाल अरुण छूने की मेरे बाल स्वभाव में—
सहसा दौड़ गई कैसी लालसा दिल भाव में !
॥९५॥

वहाँ अङ्गार को पाया जलाता लाल लाल जो,
सो दिया खेलने को क्या किशोर कृष्णलाल ने !!
॥९६॥

विरहतप्त गोला जो प्रियतम प्रसाद सो,
संमानूं प्रिय रूपी को, ज्वाला भी रस याद में।
॥९७॥

ज्वालाओं के कलेजों को कलेजा चीरता रहा !
विरहाश्लेष—रङ्गों में चैतन्य चीर में रहा !!
॥९८॥

जीव ज्योति जलाती है जीवनेश—वियोग में।
सुलाती अग्निशय्या में संस्मृति के सुयोग में !
॥९९॥

वियोगवह्नि से विष्णो! जीवत्व का विनाश हो!
अनलदाह से देव! देहत्व का सुनाश हो!
॥१००॥

अंतिम देह यात्रा के अंत्य संस्कार को प्रभो!
अग्निदाह नहीं जानो; अग्नि से शुद्ध हो विभो!
॥१०१॥

क्यों नरम कलेजे को एसा गरम तू करे ?!
परम पदवी धारी शरम क्या नहीं हरे ?!
॥१०२॥

* स्वर्णमाला *

नहीं स्फूर्ति, नहीं मूर्ति, नहीं शांति, नहीं स्थिति,
नहीं आसन योगादि, नहीं ध्यान, नहीं धृति ।
॥१०३॥

'अजंपा जाप' की माला श्वास के सङ्ग में चली ।
×झापना भी न आँखो में प्रश्वास सङ्ग में घुली !
॥१०४॥

जो बारवार भट्ठी में तपाया खूब ही गया ।
फिर और विधानों से निकषों से घिसा गया !
॥१०५॥

एसे सुवर्ण हार्दों के टुकडों से बनी हुई—
सुवर्ण से सुवर्णों की रसमाला गुनी हुई—
॥१०६॥

घनश्याम ! बलैया लूँ अंतः अम्बरधारी हे !
पहनो पीतमाला को पीत वदनधारी हे !
॥१०७॥

श्वेत उज्ज्वल पन्नों में श्यामाक्षर लुभावनी !
प्रिय 'सुवर्णमाला' में शोभा तेरी सुहावनी !!
॥१०८॥

धन त्रयोदशी
२०१३, सोम

ता. २१-१०-५७
मुंबई

×ઝે ઘડી આંખો મીચવી

वलयमाला [५]

वलयमाला

[अनुष्टुप्]

○ रस–शिक्षा ○

॥१॥

केश विन्यास में भी है
न्यास अंतर वेश के!
उन्मुक्त बद्ध बेनी में
तेरे ही तोष रोष हैं!

॥२॥

रसेन्दो! रोष आने से
श्री दड-दान के लिये,
हे प्रिय कमलाकांत!
कमलदंड को लिया!!

॥३॥

सोचती हूँ लिये तेरे
कमलदंड योग्य है!
कमलरस काया को
मृदुल रस भोग्य है!

॥४॥

प्रसादी (!) को तुझे देती
अंतः रेशम तंतु से—
सरस सूत की धोती
धरूँ कमलकांत को !

॥५॥

नेत्र कमल आंसू से;
कमलदंड हो गये !
तव कमलपत्तों ने
कमलगर्भ से किये !

॥६॥

नेत्र सरोज दर्शों के
दुःख में तरसें रहें !
नयन सर को शांति
श्री सरसिज दे रहें !

॥७॥

अंतः किंजल्क से मैंने
बनाया एक चंवर !
जिस को मैं डुलाती हूँ
हे प्रिय ! राधिकावर !

० माला बेनी ०

॥८॥

फूल की मृदु बेनी ओ!
केश पर सुहा रही
जुड़ी हुई जुड़े में ही,
वेदनाएं सुहा रही!

॥९॥

सुमन मालिका ओ! तू
सुषमा को मिला रही,
उस के पृष्ठ में कैसी
शूलमाला हिला रही!

॥१०॥

दुःखों की ढंड के मारे
जुड़े की आड़ में अड़ी!?
ग्रीष्म के ताप के मारे
शीतल कंठ में पड़ी!?

॥११॥

देह हिंदोल में मेरा,
हिय हिंदोल दर्द में!
कहाँभी न सुहाता है—
तेरी सुरत—याद में।

○ कुसुममूर्ति को ○

॥१२॥

धराता है तुझे कोई
शृङ्गार पुष्पहार को!
परंतु मुरझाने से
गिराता बस जोर से!

॥१३॥

तब मानो स्वयं मैं ही,
पटकी गई जोर से!!
हिय के खंड रोते हैं,
रात में शत शोर से!

॥१४॥

सम्हलते धराती ही,
सम्हालती उतारती,
दोनों मेरे लिये अङ्ग!
रसपूजन अङ्ग हैं!

॥१५॥

'निर्मल' मन के पुष्प
तिहारे मुख्य अङ्ग हैं!
निहारें पुण्य सङ्गों में
हार के पुष्प रङ्ग हैं।

○ हृदयज्ञा किंकरी ○

॥१६॥

अत्यन्त द्वेष में पूरे
या तो अत्यंत प्रीति में
अपराध – पराकाष्ठा
पहुँचे भिन्न रीति से !!

॥१७॥

छाया है एक में पूरा
विषैला द्वेष राज्य है।
दूसरे में दीखे पूरा
स्नेह का हिम जाड्य है।

॥१८॥

अज्ञ सा जड़ सा स्नेह
नहीं चाहूँ हृदीश हे !
अज्ञता, जड़ता भी रे
सेव्य के दुःख ईश हैं।

॥१९॥

स्निग्ध 'चंद्रावली' देवे
अपनी 'चातुरी' मुझे !
'श्री ललिता' सखी देवे
अपनी 'माधुरी' मुझे

॥२०॥

देवे 'व्रजलता' मुग्धा
'हिय कोमलता' मुझे !
अनन्य श्री 'विशाखाजी'
प्रिय 'स्नेहिलता' मुझे !

॥२१॥

कृष्णप्रिया सखी देवे
वरद् – वरदान में !
श्री हरिवर–सेवा में
रसद् रसदान दे !

॥२२॥

तुम्हारी मैं करूँ सेवा
प्रिय ! गोकुलचन्द्रमा !

कोमलता - पराकाष्ठा
नयनफूल चन्द्रमा !

○ सर्व रूपों में सत्कार ○

॥२३॥

आँखों के आँगनों में ही
खेलिये 'जसुलाल' हे !
अपाङ्ग प्रांत में पूरूँ
नागर नन्दलाल हे !

॥२४॥

खिलाड़ी ! खेल खेलोन
मित्र 'गोप किशोर' हे !
नर्तनमस्त हो तुम्हीं
मन के कुंज मोर हे !

॥२५॥

रस रास रचाओं जी
रसेश ! 'राधिकावर !'
वृक्ष से वक्ष में आओ
हृदीश गोपिकावर !

॥२६॥

जीवनरथ में राजो
पार्थिव–पृष्ठ 'सारथि !'
अपार्थिव स्वरूपी हे !
पार्थ के प्रिय सारथि !

||२७||

वस्तु ही वस्तु में तेरा
विभूति रूप खेलता ।
अङ्ग प्रत्यङ्ग में तेरा
संभूति रूप खेलता ।

||२८||

भावना भग्नता में भी
भभूतिरूप खेलता !
भावना मग्नता में भी ।
हो अनुभूति खेलता !

○ निर्गुणा सगुणा गोपी !? ○

॥२९॥

पूजा के थाल में देव ।
तिरंगे फूल हैं खिलें ।
गुणमय ! गुणातीत !
तेरे चरण में मिलें ।

॥३०॥

'सत्त्वगुण' सुखांशों के पारिजातक फूल हैं !
रजोगुण रसांशों के प्रिय लाल गुलाब हैं !

॥३१॥

'तमोगुण' तमांशों के नील कमल हैं गिले !
गुणातीत न हो पाई गुणपूजन हो भले !

॥३२॥

तेरे गुण पिरोये हैं
अंतर गुण में गुणी !
तो मेरे गुण होएंगे
धन्य सद्गुणी ही ऋणी !

○ पधरावनी ○

॥३३॥

पधारें वे प्रिया पूज्या,
श्रुतिस्वरूप गोपियाँ !
अनन्यभाव से चाहूँ
अनन्य पूर्व गोपियाँ !

॥३४॥

पाणि – ग्रहण – संस्कार
आपकी पुण्य साक्षी में
व्रज सुंदरियाँ मेरी
सखियाँ गीतदक्ष हैं !

○ गुरु–शरण ○

॥३५॥

"समित्पाणि" खडी हूँ मैं
हे गुरुदेव ! देखिये !
हे प्रिय सद्गुरो ! तुम्हीं
तुम्हारे गान के लिये

॥३६॥

जीवन–यज्ञ वेदी में
भाव समिध सद्गुरो !
अदग्ध अग्नि से पाणि
पदों में शिरकी शिरा !!

॥३७॥

यज्ञ की यष्टि में से क्यों
धुँवा निकलता रहा !
किंतु बाहर जाने का
निरुद्ध मार्ग ही रहा !

॥३८॥

वेद संकल्प मंत्रों में
सलिल प्रेम मंत्र का !
साक्षी है पुण्य रूपी श्री
अनल नेम तंत्र का !

॥३९॥

यज्ञ ऋत्विज होने को
वरुणी सूत्र बांधिये !!
हे मेरे पूज्य आचार्य !
सत्र के सूत्र बोलिये !!

०"*जड़ उदीक्षतां पक्ष्मकृत् दृशाम्" ०

॥४०॥

विधाता ने बनाई क्यों
एसी एक रसाकृति?!
न, जड़ विधि जाने क्या
सुंदर रस की कृति!

॥४१॥

विधाता ने अरे, रे, रे
सारी बाजी बिगाड़ दी।
जो बनी विगडी, तुम्हीं
सुधारो प्रिय! होड़ सी।

॥४२॥

'संयोग' शब्द कोशों में
संयोगी वर्ण जल्पना,
सत्य है मात्र मेरी ही
रस संयोग कल्पना।

॥४३॥

कलित कल्पनाएं ये
निद्रा को नित्य तोड़ती!
ललित कल्पनाएं या
निद्रा का सत्य जोड़ती!

॥४४॥

तुम्हारी स्वप्न में पाई
पांति को पढ़ने लगी,
आँखों के खुलते तेरी
स्वप्न पंक्ति कहाँ चली!

---

* શ્રી મદ્ભાગવત–ગોપિકાગીત

○ श्रीजादूगर–शिरोमणि ○

॥४५॥

कैसी शामत[+] आई है
उघारी पलकें जभी
बंद की असली आँखें
जादू–प्रयोग ने अभी!

॥४६॥

ध्यान के पेड़ के नीचे
चौकोरा एक है बना,
समय को बिताती हूँ
तुम्हारे गान में गुना !

॥४७॥

ग्रीष्म का ताप भी देखा,
थहराती सुशीत भी,
तूफ़ानें घन की देखीं
घनेरी बरसात भी !

॥४८॥

लपटें लपटाई है
तेरे विरह में हरे !
तौ भी मै अमराई[×] ही
रचती रहती हरे !

॥४९॥

जुदाई का दीखा जादू
एक पलक में अली !
हे जादूगर खेलों में
मेरा है प्राण का बलि !

+ આફ્ત × આંબાવાડી, નંદનવન.

० रसतीर्थ ०

॥५०॥

विराट विश्व के कोई
कोने में ज़िंदगी बहे,
तेरे ही रूप सर्वत्र
नेत्रों से दिखते रहें।

॥५१॥

गोविंद गुण गङ्गा में
शारदा सरिता मिले।
तुम्हारी रूप कालिन्दी
प्रीति प्रयाग में मिले।

॥५२॥

पुण्य कवन! तेरे में
जीवन की नदी मिले!
रस जीवन! मेरे ओ!
कवन नद में मिले!

॥५३॥

करण रसतीर्थों का
तीर्थीकरण हो यहीँ!
मरण रसतीर्थों में
हरि शरण हो जहीँ!

||५४||

देह अशक्ति से जो मैं,
या धन के अभाव से,
यदि पहुँच पाऊँ ना
तीर्थों में, मन भाव हे!

||५५||

तो क्षमा करना, श्याम!
जहाँ मेरी कुटीर हो,
वहाँ विराजना प्राण!
तेरी काया–कुटीर में!!

○ श्वासोच्छ्वासों को ○

॥५६॥

बेचारी प्रिय साँसें ये
खड़े पैर खड़ी खड़ी,
बहाती पुण्य गानों में
तेरे स्मरण की छड़ी !

॥५७॥

उसके उपकारों को
कैसे भूल सकूँ कभी !?
साँसे ही सखियाँ मेरी,
पालतीं प्रीति में अभी !

॥५८॥

काया ही रखिया होगी,
उसके पुण्य वियोग में !
साँसों को सङ्ग में लेती,
मिलूँगी आत्मयोग में !!

○ निश्चलता ○

॥५९॥

हो कर चंचला बुद्धि
फिर से हो अचंचला,
यूं भी कभी न होवे ही
पल के शत काल में।

॥६०॥

दो पद वे चलें आगे,
पीछे दो पैर जो धरे,
चढ़ उतर खेलों सा–
स्नेहाभास न हो अरे!

॥६१॥

यदि अस्थिरता का भी
अणु जो ध्येय में दिखें,
उसके पहले मेरे–
प्राण हो अग्नि की शिखा!

॥६२॥
धरणी, धारिणी जैसी,
ज्यों कलाधर धारका!
एसी हो धारिणी धी, श्री
तेरे में रसधारक!

॥६३॥
सूरज चाँद जैसे हैं,
जैसा स्थिर हिमाचल,
वैसा ही स्थैर्य मैं चाहूँ
हे मेरे रस चंचल!

॥६४॥
अरे भूली, नहीं, मुझे
उपमा में निवेदन,
महा नग धरित्री भी
सोते हैं कालगान में!

॥६५॥
प्रलय में नहीं छूटे
एसा प्रेम हृदीश हे!
चाहूँ मैं एक निष्ठा से
मेरे भावाचलात्म हे!

० तल्लयता ०

||६६||

'प्रथम पुरुष'—श्री में
'मै जोड़ूँ सर्वनाम को!
मैं मेरे में कहाँ हूँ क्या!?
प्राणों के प्रिय राम हे!

||६७||

मैं नहीं जानती प्राण!
क्यों टिके प्राण देह में!?
प्राण इन्हें कहूँ मैं तो?!
या तुझे प्राण मैं कहूँ!?

||६८||

हे वेणुधर! गानों के—
ध्यान में ध्यान लीनता!
कभी श्री ध्यान में गान
ध्याता है प्रीतिपान को!

||६९||

अङ्गों में हीं कभी दोनों,
होते हैं लीन मौन में!
मौन भी छेड़ता तानें,
कल्पना रस यान की!

○ कौन सी गणना !? ○

॥७०॥

अङ्गुलि अंक रेखा को
देख के गिनती हुई,
"श्री-संख्या गिनती है क्या-
रुपिये जोड़ती हुई"

॥७१॥

चलते काम सारे ही
चिंता क्यों गिनने की भी ?
ईस के कोशखंडों से
आते ही रहते कभी !

॥७२॥

आगे पीछे जहाँ कोई
गिनने का न अंक हो,
जोख कर तराजू से
भेजता है अशंक सो।

॥७३॥

"तब श्री गणितों का ही
क्या चलता प्रकार है !"

गणितज्ञा न हूँ भैया !
गणित शास्त्रकार भी।

॥७४॥
"देवी दैवज्ञ हो तुम्हीं
वृश्चिक कुंभ राशि को—
देखती भाग्यशाली के—
क्या तू सौभाग्य राशि को ?"

॥७५॥
नहीं मैया ! मुझे ज्ञान
कोई नक्षत्र क्षेत्र का,
प्राण चातक है मेरा
स्वाति—नक्षत्र—मित्र ही !

॥७६॥
"गणना क्या दिनों की है-
आ रही नव्य भावुका !?"

पहेली ही—सहेली है
भावना—भव्य भावुका !

॥७७॥
नहीं कोई प्रतीक्षा है
यहाँ मेरी कहाँ सखि !
मात्र है लेखनी मेरी
सहेली साँस की लखी !

॥७८॥

जानती भी नहीं क्या तू!?

हूँ एक रस लालिमा!

*'गण' की गणना में ही—

प्रिय पावीण्य बाल सा!

॥७९॥

अलक्ष्य मन के साथ

चले माला निरंतर!

लक्ष से मणियों में भी

अलक्ष्य लक्ष्य अंतर!

॥८०॥

गुरु औ ह्रस्व पारें भी

आ जाते बीच में कभी

अँगुली अंक रेखा में

अँगूठा झूलता तभी।

*કાવ્ય શાસ્ત્રાનુસાર છંદના ગણ.

○ वलयमाला ○

॥८१॥

शाश्वत् सोहाग की चूड़ी, धन्या हूँ धारती हुई !
सौभाग्यनाथ ! आऊँगी बाला सोहागिनी हुई !

॥८२॥

कुंकुमतिलका बाला, शाटी कुमकुमी धरूँ।
श्रीकुमकुम-रंगों की चूडिया रंग से धरूँ !

॥८३॥

रस कुंकुम पात्रों से तुझे तिलक को करूँ।
मङ्गल द्रव्य को शोभा प्रिय ! बिखरती रहूँ !

॥८४॥

रक्तिम प्रेमधारा सी
रंगीली लाल चूडियाँ !
हरित भावना जैसी
हरी रंगीन चूडियाँ।

॥८५॥

पीले कंगन हैं कैसे
हरिद्रा से बने हुए!
मङ्गल कार्य में रक्खी
हरिद्रे! भद्र रूप हे!

॥८६॥

पीत अम्बर में तेरे तादाम्य रंग से मिलें!
भिन्नता दिखती थोड़ी जब कंगन ये हिलें!

॥८७॥

कंगन केसरी कैसे कीर्ति केसर से बनें!
प्रिय आँगन मे खेलें प्रीति किंजल्क में सनें!

॥८८॥

दाड़िमी रंग की चूड़ी दौड़ती रसविह्वला।
चुने दाड़िम दानों को खिलाती ही तुझे मिली।

॥८९॥

जांबुन रंग के जैसी
चूडियॉ फिरती रहीं।
श्रीजंबुद्वीप में कैसी
रसबानी बनी रही।

॥९०॥

श्रीरसस्मरणों में से
प्रिय प्रदक्षिणा करे,
नीबू के जल के जैसी
मिलन भावना भरे।

॥९१॥

फाग के रंग सी धारीं गुलाबी रंग–चूडियाँ !
गुलाबी होठ को छूती मस्तानी रस की घड़ी।

॥९२॥

लगे कलाई[×] में कैसे रखिया रंग–कंगनें
कोई लक्ष्मण ने मानों खींची रक्षा लकीर ये !!

॥९३॥

अभ्र से खेलने आई मेघिली रंग–चूडियाँ !
शरद शुभ्र रंगों सी गुण सत्त्वज चूडियाँ !

×કાંડું–પહોંચો

॥९४॥

योगी मुस्कान के जैसे
ओपल रंग कंगनें
शारदा–ध्यान में धारें
तत्त्व के रसरंग में !

॥९५॥

निर्मल जल के जैसे
वृत्ति–वलय विज्ञ से !
न कोई उस में रंग
ज्ञान आलय सुज्ञ से।

॥९६॥

वलय दूधिया रंगी अमूल मोल से मिलें !
धवल दूध गंगा क्या गोल गोल घुली मिली !?

॥९७॥

रस कंकण हैं कैसे रजत चांदनी लिये !
नयन चंद आभा को मस्ती में चुमते गये !

॥९८॥

वलय बीज रंगी वे कल्पना परिधान से।
विद्युत् प्रभाव के जैसे पाणि–मिलन मान में।

॥९९॥

काले कंगन धारे हैं
अमा के अभिसार से।
विरह की तमिस्रा में
जो हैं हृदय सार से!

॥१००॥

दिया है जन्म से तूने
ऐसा सूत हृदीश हे!
वलय सूत के मैं ने
पहने है रसेश हे!

॥१०१॥

गाठें है लक्ष्य कोटो ही उपहारित सूत में।
फिर भी उलझाती हूँ प्रीति प्रसाद पूत सी।

॥१०२॥

नहीं हैं ग्रन्थियाँ, भूली, कला की रस भात है!
सुषमा दे रही कांत! प्रेम की मूर्त बात है!

॥१०३॥

उसी ही सूत में मैंने पिरोये फूल, रंग से!
जीवन तुलसी मेरी 'श्यामा'—वलय सङ्गमें!!

○ विश्राम—वेला ○

॥१०४॥

*नेत्र हैं; विश्व की आत्मा,
शून्य है; गुण अन्त में।
ऐसी संवत्सर—श्री में
माला—जाप अनंत है!

॥१०५॥

स्वस्ति कल्याण अर्थों में
होता है सुप्रयुक्त जो।
साढ़े तीन सुवर्णों का-
+संज्ञा वार नियुक्त सो॥

॥१०६॥

महारास रचाया था,
श्रीयोगेश रसेश ने-
जिस दिन निशा में ही,
श्री ×घड़ी मे हृदीश ने-

*२·१३ +मंगलवार,
×शरद पूर्णिमा

॥१०७॥

वेला में उस, माला की
गति भी चलती रुकी;
नहीं, शरद रासों की
झांखी में खेलती झुकी!!

॥१०८॥

शरत् से भाव छाये हैं—
शरद ऋतु है सखि!
श्यामा के लोक में खेले—
निर्मल मल्लिका सखि!

ता १-१०-५७ मुम्बापुरी

भवमाला [६]

(१) वाक्परिणय
(२) आत्म परिणय
(३) नाम लेखन-स्थान
(४) अविराम विराम
(५) दाव लेना
(६) वर्षा महोत्सव
(७) जाह्नवी-घाट
(८) दशरंगी दशा
(९) संकेत-स्थान
(१०) सेवा-विवशता
(११) मानिनी अँगीठी
(१२) कीर्तिमयी कौडी
(१३) विशुद्ध वराटिका
(१४) श्री पुत्री
(१५) रस-साम्राज्ञी
(१६) महादेवी (!)
(१७) दोष-शिक्षा
(१८) वधस्थान को बधाई
(१९) भवमाला .....
(२०) किरन-झरन
(२१) स्मरण या मरण
(२२) हालवाँ
(२३) यजन या मुखवास
(२४) निरजन की नीराजना

भवमाला

अ
नु
ष्टु
प्

~ वाक्परिणय ~

निर्मलश्याम—साक्षी में रस आँगन में भये-
अनबोल सुभावों से बोलीने व्याह को किया।
॥१॥

पाणिग्रहण होते ही स्वभाव गुण धर्म के-
विनियोग हुए कैसे अनंत रस मर्म के।
॥२॥

भावकी मूकता थोड़ी बोली में बहती गई,
बोलीकी रसझंकारें भाव को कहती गई।
॥३॥

~ आत्मपरिणय ~

सदा हूँ बालिका मैं तो देवकी–जसु–लाल हे !
मैं तो नित्य किशोरी हूँ किशोर! गोप–बाल हे !
॥४॥

सर्वदा यौवना हूँ मै श्री रासेश्वर नाथ हे !
तन रूपान्तरों में भी रसदेह सनाथ है !!
॥५॥

मिष्ट मनन मे प्रौढ़ा मोहन ! मुनिगम्य हे !
हृदयारूढ़ हे स्वामी ! प्रशांत रस रम्य हे !
॥६॥

वृद्धा विचार–वात्सल्य बहते भरपूर हैं ।
आओ विराट–हे राज ! पधारो आत्मपूर में !!
॥७॥

मैं तो अपरिणामी हूँ देह के परिणाम में ।
अपरिणत ! मेरा तू श्री परिणय धाम हो ।
॥८॥

~ नामलेखन–स्थान ~

सविता–किरनों में भी क्यों तेरे नाम को लिखूँ !?
कविता–झरनों में भी क्यों तेरे नाम को लिखूँ !!
॥९॥

चद्रकी किरनों में भी क्यों तेरे नाम को लिखूँ !?
तारक–हारमें भी क्यों तुम्हारे नाम को लिखूँ !!
॥१०॥

समुद्र–जल में भी क्यों तुम्हारे नाम को लिखूँ !?
विरह–बड़वा में मैं तिहारे नाम को लिखूँ !!
॥११॥

~ अविराम विराम ~

नहीं विराम है मेरे एक प्रश्न विराम को,
तेरा मिलाप ही मेरा एक पूर्ण विराम है !
॥१२॥

निष्फलता नहीं मानी भेजती हूँ निमंत्रणें !
बार बार हिलाते हैं तेरे स्नेह नियंत्रणें !
॥१३॥

संतप्त सुप्त है कोई, अतृप्त–तृप्त भाव हैं,
सर्व में श्याम ! संपूर्ण तेरा–गुप्त प्रभाव है ।
॥१४॥

~ दाव लेना ~

एक बार निकुंजों में खेल ही खेल खेलते,
दशा त्रिशंकु मैंने की तुम्हारी, रसतोल में।
॥१५॥

उसका वैर लेने को फेंकी क्या भवरान में !!
मेरी दशा त्रिशंकु की उस में एक गान है !
॥१६॥

वर्षा—महोत्सव

रसा; भावरसा मेरी आंसू के पदचिह्न को,
हरियाली धरा पूजे वर्षा के पुण्यचिह्न को।
॥१७॥

आँख की भीत से कैसी जलधारा बही रही!
उत्सव रसवर्षा का मन आङ्गन हो रहा!
॥१८॥

छपरे से बहे पानी नियम अभ्रधार का!
नियम उलटा मेरा रसद नभधार का!
॥१९॥

सुहाती सुषमा कैसी पलकें छत्र भाग सी,
सलील ही बहे कैसा सलिल रसराग सा!
॥२०॥

~ जाह्नवी–घाट ~

निराशा रण में भी है आशा की एक मंजरी।
तूटे हैं साज सारे ही तो भी है रसखंजरी।
॥२१॥

स्वयं हूँ फूल के जैसी जीती हूँ मूल रूप सी।
घूमती हूँ दिवानी सी सोती हूँ शांत कूप सी।
॥२२॥

सलिल गर्भ में मेरा सुंदर सौम्य वास है!
नहीं, श्री जलगर्भों का मैं हीं धन्य निवास हूँ!
॥२३॥

वियोग जाह्नवी घाट कैसा सुंदर है सखी!!
प्राण शिल्प शिलाओं के तल्प में शील है सखी!
॥२४॥

नहीं ये पांसुली मध्य चलती श्वास की गति,
श्वास निःश्वास वायु श्री आयु में शांत सद्गति!
॥२५॥

~ दशरंगी दशा ~

भले ही देवता जैसी पूजा हो इस काय की;
मैं तो पुजारिनी भोली अंतर रस काय की!

॥२६॥

कभी कार्य कलापों में बैल के सम है गति,
कभी तो ऊँट के जैसी होती है रणमें गति।

॥२७॥

कभी तो हरिणी जैसी दौड़ती स्मृति कुंज में,
कभी तो सारिका जैसी तन्मय रसराज में।

॥२८॥

कभी मै धेनुके जैसी तृणको चरती रही,
प्रिय! गोपाल! गोविंद! पुकारें वन में वहीं।

॥२९॥

कभी मैं ×शुक के जैसी श्रीकथा सुनती रही,
कभी मैं शुक के जैसी सुनाती संहिता रही।
॥३०॥

कहाँ श्री व्यास के पुत्र !? कहाँ पामरजीव मै ?!
शुक का अर्थ तोते सी रहूँ मधुर भाव में।
॥३१॥

मुक्त विहग के जैसी उड़ूँ गगन चौक में,
फूल हो; तप्त लोहे सी सोऊँ अगन लोक में !
॥३२॥

× શ્રીવ્યાસના પુત્ર શુકદેવજી એ પૂર્વભવે પોપટરૂપે શ્રીશિવ-પાર્વતીજીની ભગવતકથા ગુપ્તભાવે સાંભળી હતી.

संकेत-स्थान

कहाँ तुझे बुलाऊँ मैं !? मेरा नहीं मकान है।
देह सदन तेरा है आओ मदनमोहन !
॥३३॥

कंटकों की यहाँ शय्या नहीं पैर धरो कहीं।
कोमल ! कमलाकांत ! हिय में पाद धरो यहीं।
॥३४॥

तेरी शय्या बिछाई है तेरी ही रसकुंज में !
उपधान बने अंक मेरा ही रसपुंज सा !
॥३५॥

सेवा–विवशता

तेरी स्वरूपसेवा में करो मुझे त्रिरूप हे !
माँगूं मैं वरदानों में श्री त्रिभंगीस्वरूप हे !

॥३६॥

तुम्हारा रूपप्रासाद रह जाती निहारती !
सुंदर राजभोगों के रहें प्रसाद देखतें ।

॥३७॥

तेरे विचारमें रे, रे, दूध भी उभरा अरे,
संभालूं दुग्ध को जो मैं, रोती रसवती हरे !

॥३८॥

डालती रस मिस्त्रीको मिसरी भोग को सजूँ ।
श्री–राग छेड़ता कैसा कैसे सुयोग को तजूँ ।

॥३९॥

इतने में सुनती मैं तो करुण स्वर रंक सा–
आर्त–अंतर सोता है मेरे भावरसांक में ।

॥४०॥

सर्व ही रूप में मैं तो चाहूँ तेरी उपासना,
सहस्त्र रूप में होवे हे विराट ! समर्चना ।

॥४१॥

~ मानिनी अँगीठी ~

छोटा मा एक मैं ने ज्यों अग्नि साधन को धरा
जलता न, न जाने क्यों क्या मौन रोष से भरा!?
॥४२॥

या क्या श्री वनिताओंके कोमल नित्य स्पर्श से,
उसने अपनाई क्या आदत प्रेम रीस की ?!
॥४३॥

सिघड़ी प्राण की मेरी जली प्राणेश के लिये,
प्रेमदुग्ध उबाला है तुम्हारे पान के लिये।
॥४४॥

कीर्तिमयी कौड़ी

तैंतीस कोटि देवादि करें श्रीपति–प्रार्थना।
मेरी है देव–देवेश! तोतीली गीत–वंदना।
॥४५॥

कौड़ी या कोटी हे देव! विश्व–वैभव–ईश हे।
समान दृष्टि में तेरे भाव–वैभव–ईश हे!
॥४६॥

कौड़ी एसी सदा इष्ट सेवा में उपयोगी हो,
कोटी राशि निकम्मा है जो सेवा–विरही रहा।
॥४७॥

जो कोटी राशि भेजो तो, पहले प्रिय! भेजना,
कोटि से कोटि भावों को, हो तेरी पुण्य सेवना।
॥४८॥

तुम्हारी नाम सेवा में, या तो स्वरूप सेव में,
या तो शारद सेवा में, या तो शरद भाव में,
॥४९॥

भगिनी मातृरूपों के पुण्य विकास गान में,
सुंदर रसरासों के कंठ के स्वर तान में,
॥५०॥

श्री कवि लेखकों के या श्री संत–जन मान में,
या तो रम्य कलापूर्ण कृति के बहुमान में,
॥५१॥

या तो त्रिविध आर्तों के दुःख में उपयुक्त हो।
हे जनार्दन ! एसा ही सद् धन जो सुयुक्त हो।
॥५२॥

तुम्हारी सेवना में ही जो धन हो सुबाधक,
भूल से भी नहीं भेजो धन दुर्भाग्य साधक।
॥५३॥

+श्री–पुत्री, वनवासी सी प्रिय अकिंचना दशा,
महा सौभाग्य के जैसी मानती सफला दशा।
॥५४॥

+ મહાલક્ષ્મી-યોગમાયાની પુત્રી, સત્ય સૌંદર્યની ઉપાસિકા

~ विशुद्ध वराटिका ~

सांप्रत देश कालों में द्रव्यशुद्धि न है सखे !
आसुरी धन अस्पृश्य दिल के दाह राख से।
॥५५॥

अशुचि द्रव्य ऐसा ही त्याज्य है धनवान का,
शेष है 'वित्तजा सेवा' परम शुचि कांत हे।
॥५६॥

वृत्ति वराटिका लाई श्री शुचिव्रत को लिये।
स्वीकारो कोटि सो श्रीश ! भावना व्रत को लिये।
॥५७॥

~ श्री पुत्री ~

श्री–स्वामिनी कभी ना मै स्वामिनी रस की सदा !
श्री की मैं लाड़ली बेटी यामिनी चंद्र की मुदा !
॥५८॥

उभय मात मेरी हैं शारदा और इन्दिरा,
हूँ अकिंचन तो भी मैं श्री–सौंद्य–कलेवरा।
॥५९॥

भाव सौंद्य मेरा ही उपास्य रसतत्त्व है !
उसका दान मैया ने भरा अंतर सत्त्व से !
॥६०॥

श्रीपति–पदपद्मों को लालित यदि तू करे,
तो श्री देवि ! पधारो जी विरह अन्यथा रहे।
॥६१॥

रस–साम्राज्ञी

सत्ता ऐसी कभी ना दो हो जो शिवत्ववारिणी,
सत्ता भी यदि होवे तो लोककल्याणकारिणी ।
॥६२॥

ज्ञप्ति, चेतन की सत्ता सत्ता में छा रहे जभी,
बने सद्रूप की सेवा विनम्र अङ्ग हो तभी ।
॥६३॥

प्रेमशासन की सत्ता अनुशासन है नहीं,
भावुक हृदयों के ही प्राप्त सिंहासनें यहीं ।
॥६४॥

मन आसन में मेरा प्रेम सम्राट् रहा जहाँ,
कैसी हूँ रससाम्राज्ञी महा विराट है वहाँ ।
॥६५॥

~ महादेवी (!) ~

विश्व ने विष की घूँटे विषाक्त घट भी दिये,
महा विष समुद्रों को साश्चर्य स्नेह से पिये !
॥६६॥

महा देव—कृपा के ही बल से बस पी लिये।
महादेवी—दया से ही देवी ने ये पचा लिये।
॥६७॥

परंतु शिर में मेरे प्रिय चांद्रमसी कला।
नीलकंठ बनी जो सो है नीलमणि की कला।
॥६८॥

~ दोष-शिक्षा ~

श्री कारावास की शिक्षा गोविंद ! शिरवंद्य है !
गैया सो जानती दीक्षा गोपाल ! मन नंद्य है ।
॥६९॥

तेरा है जन्म कारामें लीलायित स्वरूप हे !
जन्म से भोगती कारा आप्यायित स्वरूप हे !
॥७०॥

है कहाँ तक की सीमा जानती न असीम ! हूँ,
शिक्षा क्षितिज सी नाथ ! देखती हूँ असीम ही !
॥७१॥

सारी पूरी करी मैं ने कारा की नियमावलि,
पहरें हैं यमके जैसे मौन की संयमावलि ।
॥७२॥

अन्यायी लोग सारे ही न्यायाधीश बने जहाँ,
न्याय का शब्द भी कैसा फैसला दूर है जहाँ ।
॥७३॥

प्रवेशपत्र छोटे हैं जाते उतरते सभी।
आगे पीछे भले बारी जाना निश्चित है कभी।
॥७४॥

साहब घर से ज्यों ही हुकुम छूटते चलें,
एक के बाद ही एक देखते सब हैं चले।
॥७५॥

~ वधस्थान को बधाई ~

दिशाएं डोलती कैसी ! पत्थर हिलने लगें !
विप्रयोग प्रलापों से पात के गात भी हिलें ।
॥७६॥

नहीं हिलें मनुष्यों के शिरा या शिर हस्त भी ।
हिय है हरि से खाली, सत् क्रिया शून्य हस्त हैं।
॥७७॥

अनुमोदन से शून्य; वाणी, वदन, नेत्र हैं ।
सब के सब सोते हैं कालके रक्त नेत्र में ।
॥७८॥

मृत्युलोक कहे कौन सुवधस्थान एक है।
वधाई है तुझे मेरी वध का लक्ष्यवेध हो।
॥७९॥

~ भवमाला ~

तेरे विरह में कृष्ण! हृदय अनुबंध सी,
हरि–विरह की माला शांति की अभिसंधि सी।।
।।८०।।

किंतु विरहमाला भी विरहिनी करे तुझे,
खींचती भवमालाएँ विवश! क्या कहूँ तुझे!
।।८१।।

भव आवर्त चक्रों में लेखनी और पत्र का,
कभी वियोग होने में होता हृदय सत्र सा।
।।८२।।

तो भी हृदय सत्रों में मंत्र मैं प्रेम का पढ़ूँ,
मन की राख ढेरों में तंत्र मैं क्षेम का पढ़ूँ।
।।८३।।

तेरे वियोग पौधे में भव खातर सा गिनूँ।
पले प्रेम प्रकाशों में स्नेह सलिल सा, कनु!
।।८४।।

रसद वायु में झूले प्रिय! पौधा वियोग का।
तुम्हारे ध्यान की उष्मा प्राण धारक–योग में।
॥८५॥

पौधा कैसा फला फूला परदेश–निवास में!
उन्हीं ही पुष्प पत्तों से गूँथी माला सुवासिनी।
॥८६॥

हरित रस पानों में वृत्ति विश्व–विभाकर!
विविध रंग तेरे हैं मन गुण–गुणाकर!
॥८७॥

स्वरूप दान तेरा है व्रज राज सुधाकर!
मैं भी एक लता तेरी निकुंज रस–आकर!
॥८८॥

श्री वनस्पति विश्वों में यही विज्ञान अंग है।
श्री रवि चंद्र के रम्य पत्तों में रूप रंग हैं।
॥८९॥

~ किरन-झरन ~

अनेक एक से भी हैं एक से भी अनेक से।

विभाकर करों में मैं देखती भाव रंग वे।

॥९०॥

निर्मल वसुधा में यूँ तेरे किरन रंग हैं,

रंगो में भिन्न से तो भी अभिन्न रस अंग हैं।

॥९१॥
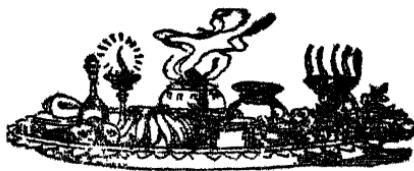
~ स्मरण या मरण ~

तुम्हारी संस्मृति मेरी श्री–निधि एक मात्र जो।
तेरी मानस पूजा में विधि है एक मात्र सो।
॥९२॥

सार्थक स्मृतियाँ मानूँ, जानूँ या मैं निरर्थक?
तेरी निष्ठुरता कैसी क्या कहूँ सार्थवाह हे!
॥९३॥

महा दानेश्वरी देव! तुम्हारी कीर्तियाँ सुनी!
क्या दिया दानमें देव! हृदय धूम्र के बिना!?
॥९४॥

प्रीति में प्रिय साथी का स्मृति योग सदा रहा,
भव बिस्मृति में मेरा प्रेमरोग बढा रहा!!
॥९५॥

हर ले, हे हरे! नाथ! सारी स्मरण शक्तियाँ!
स्मरण रमण–श्री मे है मरण प्रयुक्तियाँ!
॥९६॥

तेरे स्मरण को मैंने माना था वन खांडव,
देखती अब तो मित्र! मरण शत तांडव!
॥९७॥

~ ढालवाँ ~

राई का लघु दाना ज्यों
ढल जाता जमीन से ।
दिल का मधु दाना त्यों ढला क्या—
आसमान से !!
॥९८॥

दानों के क्रीड़नों में क्यों
दान की दीन कम्पनें !
आङ्गन—अंतरों में क्यों—
अंतरों के घिरे घन !!
॥९९॥

मेरा अस्फुट,
उन्मेषी;
मृदु यौवन नित्य है।
तेरे लिये सदा श्याम ! जो एकरस सत्य है।
॥१००॥

तेरा मैं चाहती मात्र
प्रेम का पुचकार ही।
बहतीं रसधाराएं
घाट से बारबार ही।
॥१०१॥

छोटी सी सरिता मानों

सिंधुको मिलने चली !

भावयौवन धाराएं, रससागरमें

घुली !

॥१०२॥

~ यजन या मुखवास ~

तेरी पूजा अधूरी है श्री पुंगीफलके विना,
लाई अर्चनमें देव! मांगल्य फल ये गिनें।
॥१०३॥

छोटी सुपहरी में ज्यों
रेखाएं चित्रराग सी,
प्रीति पुंगीफलों में त्यों रेखाएं चित्र रंग सी।
॥१०४॥

अहा सुपहरी में ज्यों सुमिष्ट स्वादु गर्भ है,
दैवने दिल को काटा—
तो भी नैवेद्य गर्भ है।
॥१०५॥

सेवा के पात्र में पूरे श्री पुंगीफल मुख्य हैं,
मुखवास सुभागी लो
जो धन्य रस गण्य है।
॥१०६॥

अखंड फूल पूजा में—
सेवामें कतरी किये,
दोनों प्रकार के देव! निरे सत्प्रेम को लिये।
॥१०७॥

~ निरंजन की नीराजना ~

मन नीराजना में है

श्री निरंजन का–

मधु ।

रहस्यमय भावों मे

है नीराजन की

सुधा ।

॥१०८॥

कार्तिकीय पूर्णिमा

गुरु–मध्यरात्रि

वि. सं. २०१४

ता. ७–११/५७ ८२/१ दादीशेठ, अगीयारी लेन, बम्बई.

[७] सायुज्यमाला

१ अंजलि
२ रसतिलक'
३ सखी परमसुंदरी
४ द्विरागमन
५ श्री रत्नकुक्षि में
६ भगवती निद्रा को
७ महाकाल मैत्री
८ जीव शिव
९ अन्त्यकालीन सत्कार
१० अगन चूनरी
११ यज्ञपुरुष
१२ धूम या धूम ?
१३ समाधिस्थान
१४ कवन प्राकट्य भूमि
१५ धूलि-प्रताप
१६ फूलों के सिंहासन
१७ मालामोक्ष
१८ प्रतिमा विसर्जन
१९ अमर संगीत
२० स्याही का रसायन
२१ सायुज्यमाला......
२२ म हा या त्रा
२३ र स का या !

सायुज्यमाला

□ अंजलि □

अंजलि है अहा
मेरी
निर्वाण जल से भरी !!
'वाण गंगा'
बही शूरी,
प्रीतिपाताल
जो
भरी ! ॥१॥

□ रसतिलक ! □

निर्मल राग से भी–
जो,

विराग वन में् चरो !
तो

मेरी–
रक्त धारा से,

ति
ल
क
श्री एते !
करो !! ॥२॥

□ सखी परमसुंदरी □

मेरी धड़कनों में ही
तुम्हारी कम्पनें दिखें।
प्रश्वास गति तालें वे
+पद आहट ही लखें। ॥३॥

क्षण जीवन को मेरा
चिर शृंगार मानना!
और मरण को मेरा
अवगुंठन जानना!! ॥४॥

अवगुंठित हास्यों में,
भव कल्याण प्राथिनी!
नव गुंफित ×अर्थी में,
वन देवी रसार्थिनी!! ॥५॥

विनाशी शव को शाश्वत्
श्री शवनम× मानना!
शिवत्व भाग से भास्वत्
स्नेह साष्टांग जानना!! ॥६॥

+ચરણધ્વનિ
×આસન

मृत्युजीवन में मैत्री
सदात्मभाव सूत्र है।
धवल कृष्ण रंगों के
सत् परिधान मात्र हैं ॥७॥

पवित्र, पूजनीया, श्री
सौम्य शृंगार को लिये,
प्रिय मृत्यु सखी मेरी
रम्य आश्लेष के लिये— ॥८॥

पधारे जब लेने को
जीवन भेट के लिये—
तब मेरे रसात्मा में
अक्षय प्यार को लिये— ॥९॥

दोनों सहेलियाँ मेरी
जीवन मृत्यु अँग सी,
अठखेलियाँ खेलें वे
तेरे में रस रंग सी ॥१०॥

श्रीपते ! जीवन मृत्यु
श्री श्रेयसी स्वरूप में
तुझ में लीन हो दोनों
प्रेयसी रसभूप हे ! ॥११॥

जीवन, मृत्यु गर्भों में
न छिपे काल ईश हे !
जीवन मृत्यु तेरे में
हो लीन मधु ईश हे ! ॥१२॥

□ द्विरागमन[×] □

पृथ्वी पीहर है मेरा न कोई कुलवंश है।
पाली पोसी धरित्री ने अपने मूल अंश में।
॥१३॥

लेने में कौन[×] गौने में आएगा मनवल्लभ !
कौन कुंज सखीरीजी आएंगी रसवैभव !?
॥१४॥

अंतिम काल को कांत ! कभी मृत्यु न माननी।
तेरे मिलन में शांत ! 'द्विरागमन' जानना।
॥१५॥

भाव भरत की साड़ी पहन कर आ सकूँ।
हरित भावना भीगी होगी कलित कंचुकी।
॥१६॥

मृत्यु तिमिर आवे क्यों मृत्युञ्जय प्रकाश में,
आनंद, प्रेम, सौंदर्य, सत्य के अवकाश में !!
॥१७॥

×આણું

□ श्री रत्नकुक्षि में □

मिट्टी ही मिट जाने को अमिट मिटती रही।
धरित्री—बालिका छोटी मन मंथन में बही !
॥१८॥

जननी अंक को चाहे श्री सीताकुल नन्दिनी।
धरणीधर — पादों में आकुल पद वन्दिनी।
॥१९॥

पुत्री के दुःख को प्यारी माता देख सके नहीं,
विभागी वेदना की ही पतली फाट में कहीं—
॥२०॥

समाना चाहती मैया ! तेरी श्री रत्नकुक्षि में !
पिघलूँ शांत भावों में अंतर रस वक्ष में !!
॥२१॥

□ भगवती निद्रा को □

दिखतीं ये खुली आँखें आँखों में किंतु नींद है।
जग पाती न सो पाती दशा प्राणेन्दु आर्द्र है ॥२२॥

मैया देख सके प्यारी अपने बालकी कभी—
ठंडी सिसकियाँ कैसे ! ठंडो हो देखती अभी ! ॥२३॥

मेरे करण तेरे में समाने को लुभा रही !
तो क्यों शरण में तेरे लेने को सकुचा रही !? ॥२४॥

हे अम्ब ! सहलाओ न शीतल गोद में लिये—
एक चुंबन दे दो न आश्लेष हार को लिये ! ॥२५॥

निद्रा की ओ अधिष्ठात्री ! शांत भगवती अलि !
सोने दो अब तेरे ही अंक में मात वत्सले ! ॥२६॥

जहाँ समाप्त हो, सारे सम्बन्धों की परम्परा,
तेरी पुण्य कृपा एसी चाहूँ मैं अपरम्परा। ॥२७॥

□ महाकाल मैत्री □

निशिवासर में–
नाथ !
तेरा ही एक ध्यान है
महाकाल–प्रतीक्षा में बीता समय गान में ॥२८॥

लोक जीवन–
रक्षा में
डर के काल ताप से
करते औ कराते हैं श्री 'मृत्युञ्जय जाप' को ॥२९॥

श्री महाकाल–
मैत्री के
जाप को जपती रही,
किनारे पर गङ्गा के, नाव की बाट में रही ॥३०॥

□ जीवशिव □

काल गङ्गा—जलों में मैं

छोटा हूँ

एक कंकर।

नर्मदा नीर शिल्पी है

होऊँगा

फिर

शङ्कर! ॥३१॥

□ अंत्यकालीन सत्कार □

हे दामोदर! आने में लंबाया भी विलंब को
प्राण आलंबनों में हैं विरह अग्नि चुम्बनें! ॥३२॥

मगर एक वेला में आयु के सांध्य काल में—
प्रिय! पधारना, स्वामी! रस चुम्बन ताल में! ॥३३॥

अंतिम काल में मेरी भले हो बंद वैखरी।
परा में गान छेड़ूँगी सूक्ष्म तंत्री स्वरावली! ॥३४॥

श्वासों के बंद होते भी दिव्य प्रश्वास झकृति,
श्याम! चालू रहेगी ही होगी एक रसाकृति! ॥३५॥

सीमा आयुष्य की लेंगी बलैया शतबार ही,
श्याम सुन्दर! हे स्वामी! अमित स्मित हारकी! ॥३६॥

अगन चूनरी

संगिनी—

नित्य है मेरी, चद्दर शांत नींद में,
अंतिम सुख निद्रा में रहेगी रस इन्दु सी। ॥३७॥

विदाईमें—

रहेगी सो, थी साथी प्रियरातकी,
अग्निसे शुद्ध होते ही कहेगी कुछ बातको। ॥३८॥

उदाहरण—

देते हैं 'सम्बन्ध समवाय' में—
'तंतु औ पट' के प्राज्ञ, सन्मानूँ रसकाय में। ॥३९॥

□ यज्ञपुरुष □

विनम्र पुण्य भावों से
यज्ञमण्डप में गई।
परंतु यज्ञकी ज्वाला ज्वालामें शांत हो गई ॥४०॥

मेरी यज्ञशिखा कैसी आनख शिख जो जली।
वृत्तिकी यज्ञरक्षा है
मंत्रकी राख में पली ॥४१॥

पुनीत ज्वालकी सौम्य
झांकी मैं करती रही।
आर्द्र हो, ज्वालको मेरी ज्वाला ही ताकती रही ॥४२॥

कौन यज्ञ करूँ मैं जो झांकी हो ज्योति रूपकी,
आओ ओ आँखकी ज्योति!
आर्तिके रसकूपमें ॥४३॥

जल से जन्म होता है
बीजली दीपका दिखा।
अबला-बल आँसू हैं हृदय-रस दीप हे! ॥४४॥

बादल बदलो तुम्हीं विरह जल से भरे,
मन गगन में खेलें
बिजली डारती, हरे ॥४५॥

पंचयाग सदा देखूं
इन्हीं ही पंचभूत में,
बहता दिल डिब्बोंसे—रस आधारसे घृत ॥४६॥

□ धूम या धूम!? □

अनल विप्रयोगों से
छाया है—
धूम धूम ही !
मैंने तो
मन से मानी
सरस रस धूम ही ! ॥४७॥

'अंत्य संस्कार' में
भी जो,
छूएगा
धूम; धाम सो—
*'ऊर्ध्व मूल' तुझे श्याम !
गति है
उर्ध्व धूम की ! ॥४८॥

---

*गीता अ. १५, श्लो १

□ समाधि-स्थान □

आजू बाजू
कभी मेरी,
बजे बाजे
नहीं; हरे !
भूल से
मान में भी वे
पास आवे
कभी नहीं ! ॥४९॥

छोटी वाहन घंटी भी
सुनाई न पड़े
कभी !
रसेश रस घंटी को
शांति में सुनती कभी। ॥५०॥

कभी कोई
न गाये ही,
मेरा स्तुति संगीत भी !
कृष्ण के गीत गाओ ही !
आत्म-संमान-
गीति में ! ॥५१॥

प्राण वियोग में भी है

प्राणों का—

रसगीत जो !

मिट्टी भी देह की मेरी

सुने

शीतल गीत को। ॥५२॥

नहीं सुन सकू

मैं तो

मेरा वचन

एक भी।

एसी प्रशांति को

चाहूँ

मौन स्तवन

एक सा। ॥५३॥

☐ कवन-प्राकटय-भूमि ☐

चोतरफ अरे लोग
हा,हा, हु,हू,
करे सदा।
प्राण; गंधर्व लोकों के
'हाहा, हूहू,'
गिनें मुदा ॥५४॥

घोर कोलाहलों में ही
मेरा जीवन, जन्म
है !!
प्राण अंतक शोरों में
मेरे कवन-जन्म
हैं ॥५५॥

शांति का
भङ्ग ही भङ्ग
जीते जी
नित्य हो रहा।

तो फिर

चिर शांति में

अभङ्ग—

चिर शांति

हो ॥५६॥

बनाया

भङ्ग भी भृङ्ग,—

मैने कमल योग में।

भ्रूभङ्ग

प्रिय काव्यों के,

झेले अमल योग में ॥५७॥

□ धूलि–प्रताप □

[फूलों के सिंहासन]

शारदा की प्रसादी से शग्द ऋतु हार ये।
श्याम के रसफूलों में गोपी–राग–निहारती ! ॥५८॥

कहीँ धूलि नहीं छूए रत्नों को, यत्नमें रही,
धरित्री के अभावों में
शिर पै -
धरती रही। ॥५९॥

*लोहों के ही कपाटों में, अंतर उपहार से
कृष्ण आभूषणोंको मैं
धरता–
रस हार से। ॥६०॥

कठिन मृदु चित्रोंका है एकत्र नियोग ही।
श्री लोकोत्तर रूपोंका
महाभागी–
सुयोग है ! ॥६१॥

कोमल कांत की वृत्ति बहती रसधार है !
कठिन कृष्णका हार्द विरह–दुःख सार है ! ॥६२॥

---

* અપ્રકાશિત–પ્રકાશિત કૃતિપુષ્પોને સુવ્યવસ્થિત, સુરક્ષિત પધરાવવા માટેની વિવિધ પ્રકારની ફાઈલ કેબીનેટો.

फूल, कूल निवासों में विरोधी कुछ तार हैं।
लोह के पिंडको भाग्य
मिला है–
ईश – सार सा! ॥६३॥

तेरे मृदुल फूलोंकी सेवामें नम्र दास ये।
लोहे के अंश सद्भागी
तेरे –
कवच भास हो। ॥६४॥

वहाँ भी धूलियाँ घूसी करी अलग नेह से–
नहीं उपाय था और,
चाही भी–
फिर चाह से। ॥६५॥

कदम्ब वृक्ष के नीचे विराजो ओ सुभागिनी!
रेणु! 'रेणु' मिलूँगी ही
आऊँगी –
मैं सुहागिनी!! ॥६६॥

□ मालामोक्ष □

मोक्ष* हो मालिकाओं का
लोहों के–
द्वार हार से,
तो पावें प्रभुभक्तात्मा पुष्प पराग सार को। ॥६७॥
प्रभु के कठ में हार
पहुँचे
वे जन्म ते हुए।
कृष्ण का जन्म कारा में प्रमाणी करते हुए। ॥६८॥
×"येही विरहमालाएं
जगह
रोकती सदा"
है जिन की कृपा से ही स्थान भी स्थिति में सदा। ॥६९॥
+"ये मालाएं बिगाडे ही
अद्यतन
दिखाव को"
ये मालाएं बढाती हैं सनातन प्रभाव को। ॥७०॥

* હરિ-રસ-ભાવુકો માટે નિર્મલ ભાવ ભર્યા શ્યામ રસ-ગ્રંથપુષ્પોનુ પ્રકાશિત સ્વરૂપ.
× જન્મસ્થાનીય જીવોની ઉક્તિઓ (!) + કુળવંશજોની નજર

*"ये ही है त्रासदायी रे"
"मोह क्यों
विश्व वाट मे"
लोक रक्षणदायी ये आत्मा के रस हाट से। ॥७१॥

हार मोहन के मेरे,
मेरा
मोह छिपा यहीं।
माया मोह विनाशी वे रस छोह छिपा यहीं। ॥७२॥

×"खूब खूब बसाये हैं,
बसाये—
ग्रंथ आसन"
जिनके बसने में है जीवन रसशासन! ॥७३॥

शरीर, मन, जो भी हो,
ज़िंदगी
बलिदान से
रक्षा मैं इन की चाहूँ रसेश रसदान हैं। ॥७४॥

---

* સરસ્વતીને-સર્જિત સાહિત્યને સુસજ્જિત, સુશોભિત રાખવાના કલામય ઉપકરણો.

× અજ્ઞ-ઉક્તિ

+" किसीने अग्निपादों में
प्रदान–
यत्न भी किये,"
श्री दावानल पानों के लीलेशयान आ गये। ॥७५॥

कभी तो इन फूलों को
कोशों भी
दौड़ना पड़ा×
सिद्धि के पूर्व पुष्पों को रक्षार्थ घूमना पड़ा। ॥७६॥

मोहमयी महा ग्रामे
धरती
के अभाव में
स्थिति में भी न चैनें हैं मालाओं के विभाव को। ॥७७॥

काव्यकुसुम मेरे ये
कुसुम –
कांत के रहें,
*पश्चिमोत्तान, सर्वाङ्ग, श्री शीर्षासन में रहें। ॥७८॥

+હરિ–વિમુખ–જન
×લોક આલોક સાહિત્યને લોકમાં જગ્યા માટે ખૂબ ફરવું પડયું !!
*લેખિકાની કાયામે દશેય દિશાથી ઘેરીને રહેલી સર્જિત કૃતિઓ !

रे, रे मृदुल मेरे ये
फूलों को —
व्यायाम भी!?
फूल मालन बालाका अज्ञेय बलिदान है ॥७९॥

दुःख सुमन माला के
मालन के—
सुहार्द को
शतखंड करे तो भी खंड अखंड—याद में ॥८०॥

श्री हरिको पुकारे ही
श्रीगिरिराज—
नाथ हे !
दुःखों के गिरिराजों में तेरा सुंदर साथ हो ॥८१॥

रत्न धातु बनें मेरे
काव्यों के
पत्र ये सभी,
प्रसिद्ध सो भले होवे कठ कौस्तुभ हो तभी ॥८२॥

मालाओंने सभो देखें
असर
रूप रूप के,
सर्व ऋतु प्रभावो में पलतें पुष्प रूप हैं ॥८३॥

☐ प्रतिमा—विसर्जन ☐

देह की प्रतिमा मेरी, मिट्टीकी
मात्र है कृति,
शिल्पी ! तुने बनाई है, भीतर रस आकृति ! ॥८४॥

व्रज की धूलिमें तुने, मचाई
नित्य धूम है !
मिट्टी भोजन में साक्षी, नूपुर छूम छूम से ॥८५॥

तन मिट्टी मिले प्राण ! निकुंज—
पथ धूलिमें !
आकृति रस की गुप्त, शिल्पी की काय में मिली ॥८६॥

□ अमर संगीत □

मृत्यु,
जीवन है मेरा,
जीवन
मृत्यु है मुझे,
जीवन—माथ
जाने सो,
सखि !
मैं
क्या कहूँ
तुझे ! ? ॥८७॥

लौकिक दृष्टि से
देव !
भले
साँसें विभिन्न हों।
सुमंद मंद साँसों का
संगीत
चलता रहो ! ! ॥८८॥

□ स्याही का रसायन □

राख स्मशान की नित्य
होती अस्पृश्य मान्यता।
राख भी
इन अङ्गों की
होगी सुस्पृश्य धन्यता ॥८९॥
काया की लघु मिट्टी जो
गान को
लिखती रही।
उसकी
भस्म की भूति
शाही भी
बनती
रही ! ॥९०॥
स्याही, राख बने मेरी
श्याम नाम
लिखा करे !
दवात, दिल का पात्र
शारदा माँ
सदा
धरें ! ! ॥९१॥

□ सायुज्यमाला □

विप्रयोग शिखा मेरी कदम्ब काष्ट में छिपे।
अग्निहोत्र
सरीसी सो,
वट के मूलमें छिपे ॥९२॥

श्री यमुनाघाट से गोपी जलघट भले भरे।
परंतु
निर्मला गोपी,
जलमें जल को भरे ॥९३॥

अश्रु के घट मेरे ये कालिन्दी जल में बहें !!
अन्त्य विश्राम
मेरा, सो
*विश्राम घाट में रहे ! ॥९४॥

रस सागर में मेरे, स्वाति सङ्गम से बनें–
सरस स्मित
मोती ये,
तेरे श्री हार से बनें ॥९५॥

---

* વ્રજકિશોરના ચરણ–સરણરૂપી વિશ્રામઘાટ

मेरे केशकलापों का निकुंज तृणराशि हो !
देह वेश
मिलापों में,
पंछी की कण आश है। ॥९६॥

होवे ऋचा, त्वचा मेरी, सरस रस हास में !
मन तिमिर
हो लीन
रजनी–हास–भास में ! ॥९७॥

कलाकी भावना मेरी तेरे मयूर पिच्छ में !
छिपे मृदुलता
मेरी,
तेरे सुमन गुच्छ में ! ॥९८॥

कलित कविता मेरी तेरे ललित अङ्ग में
तुलित
कल्पनाएं ये,
तेरे वलित भङ्ग में ॥९९॥

धृति औ धारणा मेरी गोपी के प्रिय–हार्द में !!
मिलो अधीरता
मेरी
राधा की हिय–याद में !! ॥१००॥

महायात्रा

मेघ दूत रहा मेरा, मेरे जीवन काल में ! !
मेघ श्याम-पदों में सो, धरता अश्रुमाल को ! ॥१०१॥

मेघ मित्र बने मेरा,
धन्य प्रस्थान यान में।
मेघाच्छन्न नभों में ही,
मेरा पुण्य प्रयाण हो ! ॥१०२॥

न रूके सा महायात्रा
उत्तरायण के लिये।
दक्षिणायन मे देव !
अमर दक्षिणा लिये ॥१०३॥

छोड़ पार्थिव काया को, पृथ्वी प्रदक्षिणा किये—
आऊँगी रसकाया से आत्ममिलन के लिये॥
॥१०४॥

□ रस-काया !! □

चलती फिरती छोटी काया से विश्व में ही हूँ।
तो भी मायिक मिट्टीसे दूर दूर सुदूर हूँ ॥१०५॥

जीवननाथ! जीती हूँ,
तेरी ही,
कीर्ति के लिये!
जीती भी मरती हू मैं,
तेरी ही
नीति के लिये !! ॥१०६॥

मैं मरकर भी जीती,
रहूँगी
तव कीर्ति में !!
रुचिर रस काया से
दिखूँगी,
तव गीति में. ॥१०७॥

मेरे
साकार गीतो में
निराकार !
छिपा
तू ही ।।

आकारातीत भावों में,
श्री साकार !
छिपा
तू
ही ।।। ॥१०८॥

वि श्रा म
कार्तिकीय पूर्णिमा
गुरुवार-मध्यरात्रि
वि सं २०१४
ता. ७-११-५७
+८२/१ दादीशेठ अगियारी लेन, बम्बई-२

+[पूर्व-आवास-स्थान]